वैदिक महाभारत

संकलन एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ :

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. +91-94683 40497**
मुद्रक :

भूमिका

महाभारत संस्कृत साहित्य की एक अमूल्य निधि है । इसको पंचम वेद के नाम से पुकारा जाता है । इसके लेखक महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास हैं । यदि इसे भारतीय ज्ञान का विश्वकोष कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी । क्योंकि इसमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार, अध्यात्म आदि सभी विषयों का अत्यंत विशद व सारगर्भित विवेचन किया गया है । श्रीमद्भगवद्गीता भी जो विश्व में धर्मग्रंथ माना गया है और जिसका विश्व की लगभग 700 भाषाओं में अनुवाद हो चुका है, इस ग्रंथ के भीष्म पर्व के 25वें अध्याय से 42वें अध्याय तक जो 18 अध्याय हैं उसका एक भाग है ।

आधुनिक काल में देश में अनेक प्रकार के दुराचरण, कुरीतियाँ और भ्रष्टाचार व्यापक रूप से फैले हुये हैं । उनमें जहाँ ब्रह्मचर्य का अभाव, विद्याहीनता, परस्पर वैमनस्य एवं दुराचार अधिक व्यापक है वहाँ जुआ तथा मद्यपान की रुचि भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है । जुए से जो हानियाँ और दुरावस्था हो जाती है । शराब से किस प्रकार कुल का नाश होता है, इसका भी उदाहरण प्रस्तुत ग्रंथ में मिलता है । वस्तुतः जुए के खेलने से जो-जो अनर्थ हो जाते हैं, यहाँ आप इस ग्रंथ के वन पर्व में पढ़ेंगे और शराब से जो विनाशलीला होती है उसे मौसल पर्व में पढ़ोगे ।

महर्षि वेद व्यास जी ने इस ग्रंथ का नाम जय रखा था, फिर भारत और अब महाभारत हो गया । कहते हैं कि पहले इसमें 4,400 श्लोक थे और उनके शिष्यों ने 5,600 श्लोक और जोड़ दिये और इस प्रकार 10,000 श्लोक हो गये और फिर महाराजा विक्रमादित्य के समय 20,000 श्लोक हो गये । महाराज भोज कहते हैं कि मेरे पिता के समय में 25,000 और अब मेरी आधी आयु में 30,000 श्लोक युक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है । यदि इसे न रोका गया तो एक ऊँट का बोझा हो जाएगा । परन्तु अब तो इसमें 1,07,390 श्लोक हैं । इस प्रकार 13 श्लोकों में से 12 श्लोक प्रक्षिप्त हैं । अब यह संसार का विशालतम महाकाव्य बन गया है । 4400 श्लोक कौन से हैं उनको ढूंढ पाना बड़ा ही कठिन है ।

इस प्रक्षिप्त भाग में इस प्रकार के विचार भी वर्तमान हैं जो वेद एवं बुद्धि के विरुद्ध हैं । ऐसे विचारों के प्रचार से हिन्दू जाति को हानि पहुँचती है । इसलिये यह अत्यावश्यक है कि महाभारत को अपने वास्तविक स्वरूप में

जनता के सामने प्रकाशित किया जाये। अतः मैंने महाभारत और उस पर लिखे गये अनेक भाष्यों का गम्भीर अध्ययन करने के पश्चात् इसको सत्य की कसौटी पर कसकर इसका वैदिकीकरण कर दिया गया है ताकि साधारण जनता को प्रस्तुत ग्रंथ के विषय में वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सके।

इसके अतिरिक्त महाभारत के 25 अत्यंत महत्वपूर्ण उद्धरण लिख दिये गये हैं। महाभारत पर 25 विभिन्न प्रश्नोत्तरी भी लिखी गई है ताकि पाठकगण विशेषतः बच्चे इनको पढ़कर अपनी संस्कृति के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकें। मैंने प्रस्तुत ग्रंथ की रचना सच्ची लगन और कड़ी मेहनत से की है। अतः पाठकों को यह अवश्य पसंद आयेगी और इसके अध्ययन से उनके ज्ञान में भी अवश्य ही वृद्धि होगी।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री लाल चन्द चौहान, रोशन लाल अग्रवाल, सत्यपाल मोदी, नरेश बंसल, जय किशन आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतज्ञता होगी। विशेषतः श्री लाल चन्द चौहान जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता। जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका भी कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से मैंने संदर्भ उद्धृत किये हैं।

मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ और अपूर्ण है। अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा।

तिथि : 14.1.2016

धर्म पाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

प्रस्तावना

वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वेद चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेद ही मानव का संविधान हैं। यदि ईश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में चार ऋषियों को वेदज्ञान न दिया होता तो सब अज्ञानी रह जाते। श्री रामचन्द्र जी महाराज, श्री रावण वेदों के विद्वान् थे। श्री कृष्ण जी महाराज वेदों के ज्ञाता थे। महाभारत तक वेद विद्या के बहुत विद्वान् ऋषि, महर्षि, आचार्य पंडित थे। महाभारत युद्ध से देश का महाविनाश हुआ। बड़े-बड़े योद्धा, शूरवीर, वेदों के ज्ञाता भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर, वेद व्यास आदि सब वेदों के ज्ञाता थे। इनमें से महा विनाशक महाभारत युद्ध की देश विदेशों के शूरवीर, योद्धा लड़ाकू, गुरु, आचार्य, राजा, महाराजे भेंट चढ़ गये। स्त्रियों की संख्या ज्यादा रह गई और पुरुष कम रह गये। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थप्रकाश में महाभारत युद्ध से एक हज़ार पूर्व से ही देश के पतन की ओर जाने कि बात लिखी है। महर्षि दयानन्द ने देश के पतन के कारण भी लिखे हैं।

विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट मतभेद ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना-पढ़ाना बाल्यावस्था में अस्वयवंर विवाह, विषयाशक्ति, मिथ्याभाषादि कुलक्षण, वेदविद्या का अप्रचार आदि कुकर्म है।

आपस की फूट से कौरव पांडव और यादवों का सत्यानाश हो गया। यह सब वेद विद्या के अभाव में हुआ। महाभारत ग्रन्थ को धार्मिक ग्रंथ बहुत से लोग मानते हैं, ठीक जैसे रामायण को। यह मनुष्य को यह ज्ञान प्राप्त कराता है कि महाभारत युद्ध क्यों हुआ। इसका प्रमुख कारण चरित्र पतन हो जाने का रहा। जुआ, शराब आदि का पान जो वेद विरुद्ध है। वेद विरुद्ध कार्य जब होने लगते हैं, जो विनाश निश्चित ही होता है।

श्री धर्मपाल कपूर जी ने 'वैदिक महाभारत' में बड़े परिश्रम से संक्षिप्त में आरम्भ से लेकर अन्त तक कौरव व पांडवों के इतिहास का इस पुस्तक में वर्णन किया है। आज जो वर्तमान में महाभारत ग्रंथ मिलता है, उसका श्री धर्मपाल जी ने भूमिका में लिखा है कि 1,07,390 श्लोकों का महाभारत पुस्तक है। महाभारत को महर्षि वेदव्यास ने लिखा था। उन्होंने 4,400 श्लोक लिखे थे, उसके शिष्यों ने 5,600 श्लोक और जोड़ दिये, कुल मिलाकर 10,000 श्लोक हो गये। महाराज विक्रमादित्य के समय में 25,000 श्लोक हो गए थे। और महाराज भोज की आधी आयु तक 30,000 श्लोक हो गये

थे। महाराज भोज ने महाभारत में और श्लोक जोड़ने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था और घोषणा की थी कि जो इस ग्रंथ में और मिलावट करेगा उसके हस्तों का छेदन कर दिया जाएगा। महाराजा भोज के पश्चात् इस ग्रंथ में स्वार्थी तत्त्वों ने वेद विरुद्ध बातों को इस ग्रंथ में जोड़ने का कार्य जारी रखा और अब जैसा श्री धर्मपाल कपूर जी ने वर्णन किया है कि 1,07,390 श्लोक का महाभारत है।

श्री कपूर जी ने बड़े परिश्रम से संक्षिप्त में महाभारत युद्ध व कौरव पांडवों के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला है और प्रक्षिप्त बातों का भी बड़े सुनिश्चित ढंग से विश्लेषण किया है जो बातें वेद विरुद्ध हैं। महाभारत के इतिहास का बड़े ही सुनिश्चित एवं संक्षिप्त में संकलित करने का बड़ा ही सराहनीय कार्य किया है। मेरा यह मानना है कि इस पुस्तक से महाभारत युद्ध की जानकारी के साथ श्री कृष्ण, भीष्मपितामह, महात्मा विदुर आदि की धर्म के सम्बन्ध में अधर्म के कार्य जो धर्म विरुद्ध जैसे जुआ खेलना, शराब पीना, नारी का अपमान आदि कितने विनाशक होते हैं। इन्हीं के कारण महाभारत युद्ध हुआ और देश का महाविनाश हुआ। वेदविद्या का पठन-पाठन छूटता गया और देश का वेदविद्या के अभाव में पतन होता ही चला गया और अभी तक जारी है। महर्षि दयानन्द के आने से वेदविद्या का पुनः पठन-पाठन आरम्भ हुआ, इससे कुछ लोग अभी भी धार्मिक प्रवृत्ति अर्थात् वेद के नियमों का काफी हद तक पालन करते हैं। अन्त में मैं पुनः इस बात को पाठकों की जानकारी के लिए लिखना चाहता हूँ कि महाभारत की वास्तविकता को जानने के लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। मैंने इसे पढ़ कर ही यह बात लिखी है। जहाँ पर धर्म को छोड़कर अधर्म को अपनाया गया, वही विनाश हुआ।

मैं ईश्वर से श्री धर्मपाल कपूर जी की दीर्घ आयु की प्रार्थना करता हूँ, उनको आरोग्यता प्रदान करें, ताकि वह अधिक समय तक धार्मिक ग्रंथों का लेखन व प्रकाशन करते रहें। इससे बहुत लोग लाभान्वित होते हैं। मैं उनके इस महत्वपूर्ण पुरुषार्थ की भूरि-भूति प्रशंसा करता हूँ।

लालचन्द चौहान
591/12, पंचकूला (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9814881501
फोन : 0172-2563079

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 0-9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	महाराज शान्तनु एवं देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा	1
2.	राजकुमारों के गुरु द्रोण	17
3.	योगेश्वर श्रीकृष्ण	29
4.	पाण्डवों का आधा राज्य	38
5.	युधिष्ठिर का सभाभवन	48
6.	कौरवों का पुनः द्वेष जागरण	62
7.	युधिष्ठिर एवं यक्ष-प्रश्नोत्तरी	68
8.	पांडवों का अज्ञातवास	71
9.	युद्ध की तैयारियाँ	86
10.	गीतोपदेश	95
11.	महाभारत का युद्ध	98
12.	युद्ध की समाप्ति	136
13.	महाभारत के 25 अत्यंत महत्वपूर्ण उद्धरण	145
14.	महाभारतप्रश्नोत्तरी	148

महर्षि वेदव्यास

अध्याय 1

महाराज शान्तनु एवं देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा

राजर्षि शान्तनु की कथा बड़ी मनोरंजक है। महाराज भरत की कई पीढ़ियों के पश्चात् इसी वंश में राजर्षि शान्तनु एक बड़े प्रसिद्ध राजा हुये। ये बड़े मेधावी धर्मात्मा और सत्यनिष्ठ थे। बड़े-बड़े देवर्षि और राजर्षि उनका सत्कार करते थे। शान्तनु यम नियमों का पूर्णतः पालन करते थे। इन्द्रियनिग्रह, दान, क्षमा, ज्ञान, धैर्य आदि गुण उनमें स्वाभाविक रूप से विद्यमान थे। वे धर्मनीति तथा अर्थनीति में निपुण थे। वे केवल भरत के वंश के ही नहीं, सारी प्रजा के एकमात्र रक्षक थे। उन दिनों धार्मिकता में सबसे बढ़ चढ़ कर वे ही थे। प्रजा के शोक, भय और संकट मिट गये थे। सब सुख की नींद सोते और सुख की नींद जागते थे। राजा शान्तनु की राजधानी भी हस्तिनापुर थी। वहीं से सारी पृथिवी का शासन करते थे।

उनके राज्य में पशु, शूकर, हिरण और पक्षियों तक को कोई मार नहीं सकता था। ऋषि-मुनियों के यज्ञ के लिए उद्योग होता रहता था। राजा दुःखी, अनाथ और पशु-पक्षी सभी की रक्षा करते थे। उस समय सब सत्य बोलते थे। सबका मन दान के लिये उत्साहित रहता था। 36 वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए राजा शान्तनु ने वनवासी जैसा जीवन व्यतीत किया। फिर उनका विवाह गंगा देवी के साथ हुआ। रानी गंगादेवी बड़ी धर्म परायणा, विदुषी और बुद्धिमती थी। इनके गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ, उसका नाम देवव्रत रखा गया। माता ने देवव्रत को बाल्यकाल में बहुत अच्छी शिक्षा दी। उसके बाद उसने परशुराम जी से सब वेद पढ़ लिये और शास्त्रास्त्रों का भी पूरा अभ्यास कर लिया। देवव्रत धर्मशास्त्र और राजनीति में बड़ा निपुण हो गया था। वह रण विद्या में इतना चतुर था कि उस समय सारे भारतवर्ष में उसके समान कोई नहीं था। जब देवव्रत बड़ा हुआ तब इसकी माता का निधन हो गया। देवव्रत का मन अपनी माता को स्मरण करते -करते चिन्तित

रहने लगा। उसकी चिन्ता को दूर करने के विचार से शान्तनु ने उसे युवराज बना दिया और अब वह राजकाज में पिता की सहायता करने लगा। देवव्रत के मन का शोक तो कम होने लगा किन्त राजा शान्तनु अपनी रानी के वियोग में सदा उदासीन ही रहते थे। एक दिन की बात है कि वह शिकार खेलने के लिए वन में गये। वहाँ घूमते-घूमते, नदी में नाव चलाती हुई, एक मल्लाह की रूपवती कन्या को देख कर वे उस पर मोहित हो गये। उन्होंने कन्या के पिता को बुलाकर, उसकी कन्या से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। कन्या का नाम सत्यवती था। वह बहुत सुन्दर एवं गुणवती थी। सत्यवती के पिता ने राजा से हाथ जोड़कर कहा–

महाराज! यदि आप इस कन्या को अपनी धर्मपत्नी बनाना चाहते हैं तो आप मेरी एक बात स्वीकार करें, तभी इसके साथ विवाह हो सकता है।

शान्तनु ने कहा–

तुम अपनी शर्त बताओ।

निषादराज ने कहा–

इसके गर्भ से जो पुत्र होगा वही आपके पश्चात् साम्राज्य का अधिकारी होगा।

शान्तनु सत्यवती से विवाह करना चाहते थे, किन्तु उन्होंने कहा–

गद्दी का अधिकारी बड़ा पुत्र ही हुआ करता है। इसलिए यह बात नहीं मानी जा सकती। कन्या पर पिता का पूर्ण अधिकार होता है। अतः मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करना चाहता।

इसी प्रकार धीरे-धीरे दिन, पक्ष और मास बीतने लगे। शान्तनु का मन न तो राजकाज में लगता था और न किसी अन्य काम में। उसे खाना पीना भी नहीं भाता था। उनका मुख निस्तेज और शरीर कमजोर हो गया।

एक दिन देवव्रत ने अपने पिता को चिंतित देखा, तो उनसे कहने लगे पिता जी पृथ्वी के सारे राजा आपके अधीन हैं, आप सब प्रकार सकुशल हैं। फिर आप दुःखी होकर क्या सोचते रहते हैं? आप इतने चिन्तित हैं कि न कभी मुझ से मिलते हैं और न ही कभी शिकार खेलने जाते हैं। आपका चेहरा

फीका और पीला पड़ गया है । आप दुर्बल हो गए हैं, कृपया करके अपना रोग बताइए मैं उसका प्रतिकार करूँगा । यदि मुझ से कोई अपराध हुआ हो, तो उसके लिए मैं क्षमा माँगता हूँ। देवव्रत का निवेदन सुन राजा कहने लगे—पुत्र ! तुम मुझको बहुत प्रिय हो, तुम से कुछ भी अपराध नहीं हुआ । तुम से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, परन्तु मैं देखता हूँ कि तुम अस्त्र-शस्त्र की विद्या में निपुण हो और सदा वीरता के कार्य में तत्पर रहते हो । हमारे इस कुल में इस समय केवल एक तुम ही वंश को चलाने वाले हो । जगत् में लोग निरन्तर मरते मिटते रहते हैं । भगवान् न करें ऐसा हो, परन्तु यदि तुम पर विपत्ति आई तो हमारे वंश का नाश हो जाएगा । यद्यपि तुम अकेले ही सैकड़ों पुत्रों से भी श्रेष्ठ हो, फिर भी वंश की रक्षा करना भी तो धर्म ही है । यही मेरी चिन्ता का कारण है । पिता की चिन्ता का कारण सुनकर बुद्धिमान देवव्रत तत्काल मंत्री के पास गये और उससे बोले —हे मंत्री जी ! पिता जी की चिन्ता को दूर करने के विषय में आप मुझे कोई सलाह दें । मंत्री ने देवव्रत की बात सुनकर राजा की चिन्ता का कारण बता दिया । पितृभक्त देवव्रत मन्त्री को लेकर निषादराज के घर गये और उससे बोले—

हे निषाद राज ! तुम अपनी कन्या का विवाह महाराज शान्तनु से कर दो । मैं उनका पुत्र देवव्रत हूँ । तुम जो कुछ मांगो, मैं देने को तत्पर हूँ ।

निषादराज ने हाथ जोड़ कर कहा—

हे युवराज ! मैं केवल यही मांगता हूँ कि महाराज शान्तनु के पीछे मेरी पुत्री का पुत्र ही उत्तराधिकारी हो ।

देवव्रत ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—

हे निषादराज ! मैं शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसके गर्भ से जो पुत्र होगा, वही हमारा सम्राट् होगा । मेरी यह प्रतिज्ञा अखण्ड है ।

निषादराज अभी कुछ और भी चाहता था । उसने कहा—

युवराज ! आपने सत्यवती के लिए जो प्रतिज्ञा की है, वह आपके अनुरूप ही है । इसके संबंध में मुझे कोई संदेह नहीं है । मेरे मन में एक सन्देह

अवश्य है कि शायद आपका पुत्र सत्यवती के पुत्र से राज्य छीन ले। देवव्रत ने निषादराज का सब आशय समझ लिया और क्षत्रियों की भरी सभा में हाथ उठाकर प्रतिज्ञा कर डाली–

निषादराज! तुम निर्भय रहो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा। न कभी विवाह करूँगा और न ही मेरी सन्तान होगी।

देवव्रत की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुनते ही मंत्री धन्य-धन्य कहने लगे और निषादराज ने दातों तले उंगली दबाई। इसी भीष्म प्रतिज्ञा के कारण देवव्रत का नाम भीष्म पड़ गया। तब से सब उन्हें भीष्म कहने लगे। पिता की इच्छा पूर्ण करने के लिए अपने सुख का त्याग करना बड़े गौरव की बात है। पितृभक्त का ऐसा उदाहरण संसार के किसी अन्य देश में मिलना कठिन है। देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा सुनकर निषादराज ने अपनी कन्या सत्यवती को विदा किया। भीष्म उसे रथ पर बैठाकर मंत्री के साथ हस्तिनापुर आ गये। राजा शान्तनु ने सब वृत्तान्त सुना तो गद्‌गद् हो गये और भीष्म को छाती से लगाकर कहने लगे–

पुत्र! मेरी इच्छा को पूर्ण करने के लिए तुमने भीष्मप्रतिज्ञा की है। तुम धन्य हो! परमात्मा तुम्हारा कल्याण करें।

फिर प्रसन्न होकर शान्तनु ने अपने पुत्र को वर दिया–

मेरे निष्पाप पुत्र! जब तक तुम जीना चाहोगे, तब तक मृत्यु तुम्हारा बाल भी बाँका न कर सकेगी।

(1) चित्रांगद और विचित्रवीर्य

सत्यवती का विवाह राजा शान्तनु के साथ विधिपूर्वक हो गया। उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए, उनका नाम चित्रांगद और विचित्रवीर्य रखा गया। दोनों बड़े होनहार और पराक्रमी थे। चित्रांगद ने अभी युवावस्था में प्रवेश भी नहीं किया था कि राजर्षि शान्तनु का निधन हो गया। सत्यवती की सम्मति से भीष्म ने चित्रांगद को सिंहासन पर बैठाया। उसने अपने पराक्रम से सभी राजाओं को पराजित किया, वह किसी भी मनुष्य को अपने समान नहीं समझता था। वह थोड़े ही समय के बाद एक युद्ध में मारा गया। इसके

पश्चात् भीष्म जी ने विचित्रवीर्य को गद्दी पर बैठाया। विचित्रवीर्य क्योंकि बालक ही था, इसलिए भीष्म जी सत्यवती की आज्ञा से स्वयं राजकार्य देखने लगे।

विचित्रवीर्य जब युवावस्था में आकर विवाह के योग्य हो गया तो भीष्म जी ने उनके विवाह का विचार किया। उन्हीं दिनों काशी नरेश की तीन कन्याओं—अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका का स्वयंवर भी होने वाला था। इनमें से अम्बा तो सौभ देश के राजा शाल्व पर मोहित हो चुकी थी। स्वयंवर में अनेक राजा महाराजा आये, भीष्म पितामह भी पहुँचे। शाल्व भी गया और इस विचार से गया कि अम्बा की वरमाला तो निश्चय ही मेरे गले में पड़ेगी। तीनों कन्याएँ स्वयंवर में आई तो भीष्म पितामह को देखकर वे मुस्करा दीं। जब वे मुस्कराहट से भीष्म पितामह का अपमान कर आगे बढ़ने लगीं, तो भीष्म पितामह उन्हें घेरकर खड़े हो गये और बोले कि मैं अपने भाई विचित्रवीर्य के साथ विवाह के लिए इन तीनों कन्याओं को ले जा रहा हूँ, जिसे आपत्ति हो मुझसे युद्ध कर ले। इस प्रकार वे तीनों को बलपूर्वक रथ में डाल हस्तिनापुर की ओर भाग चले। शाल्व ने उनका पीछा किया और दोनों में युद्ध हुआ। भीष्म पितामह शाल्व की जान लेने वाले ही थे कि उन कन्याओं ने बीच में पड़कर उसे छुड़ा दिया। शाल्व मन मारकर अपने देश सौभ को चला गया। हस्तिनापुर आकर अम्बा ने भीष्म पितामह से कहा कि मैं सौभ नरेश को मन से वर चुकी हूँ, इसलिए आप मुझे छोड़ दें। इन दोनों का विवाह अपने भाई के साथ बेशक कर दें। अम्बा की प्रार्थना सुनकर भीष्म पितामह ने उसे सम्मान सहित छोड़ दिया और सौभ देश तक उसके जाने की व्यवस्था भी कर दी।

सौभ पहुँचकर वह शाल्व से बोली कि मेरी प्रार्थना पर भीष्म ने मुझे छोड़ दिया है। अब मैं आपकी शरण आई हूँ, आप विधिपूर्वक अपनी पत्नी बना लीजिए। शाल्व बोला कि तुम बलपूर्वक हरण करके तो लाई गई हो, इसलिए तुम भीष्म के ही पास जाओ, जैसा वे कहें, वैसा ही करो। मेरे द्वार तो तुम्हारे लिए बंद हैं। अम्बा बोली—

मैं अपनी इच्छा से नहीं गई थी, मैं तो आपको वर चुकी हूँ, आप मुझे ग्रहण कर लीजिए।

परन्तु शाल्व पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। अन्त में निराश होकर वह फिर भीष्म जी के पास गई तो भीष्म जी ने कहा कि तुम एक बार जिसे मन से

स्वीकार कर चुकी हो, धर्मानुसार वही तुम्हारा पति है, उसी के पास जाओ। इस प्रकार अम्बा कभी इधर, कभी उधर चक्कर काटती रही, पर किसी ने उसे स्वीकार नहीं किया और तब वह दुःख और द्वेष की अग्नि में जलती रहीं। उसने प्रतिज्ञा की मैं भीष्म से बदला अवश्य लूँगी। भीष्म जी ने शेष अम्बिका और अम्बालिका का विवाह विधिपूर्वक विचित्रवीर्य के साथ कर दिया। विवाह के पश्चात् वह बीमार रहने लगा और बहुत कमजोर हो गया। अच्छे-अच्छे वैद्यों ने इलाज किया परन्तु सफल न हो सका और अन्त में क्षय रोग से पीड़ित होकर उसका भी निधन हो गया। इस प्रकार सत्यवती के दोनों पुत्र निस्सन्तान ही मर गये। सत्यवती को अब दिन रात यही चिन्ता रहने लगी कि राज्य का अधिकारी कौन होगा? एक दिन उसने भीष्म जी को बुलाकर कहा कि –देखो! तुम्हारा भाई विचित्रवीर्य इस संसार से निःसन्तान ही मर गया है। तुम्हारे पिता के वंश का अब नाश हो होना है। अतः तुम स्वयं राजसिंहासन पर बैठकर प्रजा का पालन करो।

सत्यवती का अभिप्राय जानकर जितेन्द्रिय भीष्म जी ने उन्हें उत्तर दिया–माता! आप जानती हैं कि आप के विवाह के समय मैंने क्या प्रतिज्ञा की थी। मैं अब पुनः प्रतिज्ञा करता हूँ–

मैं त्रिलोकी का राज्य, ब्रह्मा का पद और मोक्ष का भी त्याग कर दूँगा, किन्तु सत्य नहीं छोडूंगा। वायु स्पर्श छोड़ दे, सूर्य प्रकाश छोड़ दे, अग्नि उष्णता छोड़ दे, चन्द्रमा शीतलता छोड़ दे और स्वयं धर्मराज भले ही अपना धर्म छोड़ दे, परन्तु मैं अपनी सत्य प्रतिज्ञा छोड़ने का विचार भी नहीं कर सकता।

2. धृतराष्ट्र आदि का जन्म

भीष्म के इन्कार कर देने पर सत्यवती ने अपना अभिप्राय वेद व्यास से कहा। वेदव्यास ने सत्यवती की बात स्वीकार कर ली। वेदव्यास जी बड़े कुरुप थे, उनके शरीर का रंग काला था और सिर पर लंबी-लंबी सूखी जटायें थी। जब वेदव्यास नियत समय पर बड़ी रानी अम्बिका के शयनकक्ष में गए तब रानी ने उन्हें देखकर भय से आँखें बंद कर ली। जब तक वेदव्यास जी वहाँ रहे उसने आँखें नहीं खोली, इसलिए उस रानी से जो पुत्र पैदा हुआ वह जन्म से ही अन्धा था। उसका नाम धृतराष्ट्र पड़ गया। दूसरी रानी

अम्बालिका वेद व्यास को देखकर भय से कांपने लगी और उसका रंग पीला पड़ गया। अतः उससे जो पुत्र पैदा हुआ उसका रंग पीला था और उसका नाम पाण्डु पड़ गया।

एक पुत्र अंधा और दूसरा पीले रंग का। सत्यवती ने सोचा कि इन में से तो कोई भी राज्य करने के योग्य नहीं है। यह विचार कर उसने बड़ी रानी को फिर वेदव्यास के पास जाने को कहा। रानी मान तो गई किन्तु भय के कारण उनके पास न जा सकी। उसने अपने वस्त्र और आभूषण दासी को पहना कर वेद व्यास जी के पास भेज दिया। उससे जो सन्तान पैदा हुई उसका नाम विदुर रखा गया। महर्षि दयानंद 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखते हैं कि यदि कोई दम्पति निस्संतान है और वंश वृद्धि के लिए सन्तान चाहता है तो उसकी पत्नी अपने पूर्वजों या पति से आज्ञा लेकर केवल संतानोत्पत्ति के लिये समागम कर सकती है। इसको नियोग प्रथा के नाम से पुकारा जाता है। अतः सत्यावती की आज्ञा से वेदव्यास ने नियोग प्रथा द्वारा अम्बिका, अम्बालिका और दासी से समागम करके धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को पैदा किया ताकि इतने बड़े साम्राज्य को कोई उत्तराधिकारी हो सके। क्योंकि ऐसा करना सत्यवती की मजबूरी थी और उस समय की मांग थी। महर्षि दयानंद लिखते हैं–

व्यास के साथ नियोग होने से पाण्डु, धृतराष्ट्र और दासी के पुत्र विदुर पैदा हुए। –उपदेश मंजरी (11वाँ विषय इतिहास)

ये तीनों बालक चन्द्रमा की कला के समान बढ़ते गये। भीष्म राज्य, के अतिरिक्त इनकी देखभाल और शिक्षा का प्रबन्ध भी करते थे। धीरे-धीरे इनकी शिक्षा पूर्ण हो गई। धृतराष्ट्र शारीरिक बल में सबसे अधिक थे, पाण्डु धनुर्विद्या में सबसे प्रवीण हुए और विदुर जी प्रकाण्ड पंडित और महान् नीतिज्ञ थे। उनके समान धर्म और राजनीति को जानने वाला दूसरा कोई नहीं था। धृतराष्ट्र जन्म से अंधे थे और विदुर दासी के पुत्र थे इस कारण राज्य पाण्डु को ही मिला।

3. धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का विवाह

जब धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर सर्वगुण सम्पन्न होकर युवावस्था को

प्राप्त हो गये, तब महात्मा भीष्म को उनके विवाह की चिन्ता हुई। गान्धार देश के राजा सुबल की कन्या गान्धारी सब लक्षणों से सम्पन्न और गुणवती थी। गुणों के कारण उसकी प्रशंसा चारों ओर फैल चुकी थी। भीष्म ने धृतराष्ट्र के लिए उसे ठीक समझा और सुबल के पास दूत भेज कर अपनी इच्छा प्रकट की। सुबल ने पहले तो अंधे को अपनी कन्या देना उचित न समझा, किन्तु बाद में उनके कुल की प्रशंसा और उनके सदाचार पर विचार करके अन्धे के साथ अपनी कन्या का विवाह करना स्वीकार कर लिया। जब गान्धारी को पता चला कि उसका भावी पति अन्धा है, तो उसने भी अपनी आँखों पर पट्टी बांध ली। उसका यह दृढ़ निश्चय था कि मैं सदा अपने पतिदेव के अनुकूल ही रहूँगी। उसके भाई शकुनि ने उसे धृतराष्ट्र के पास पहुँचा दिया और भीष्म की अनुमति से उसका विवाह विधिपूर्वक हो गया।

अपने चरित्र और सद्गुणों के कारण गान्धारी अपने पति एवं परिवार को प्रसन्न रखने लगी। शूरसेन की दूसरी कन्या अति सुन्दर थी, उसका नाम पृथा था। शूरसेन की बुआ के पुत्र कुन्तिभोज के कोई संतान न थी, इस कारण शूरसेन ने अपनी कन्या कुन्तिभोज को गोद दे दी। पृथा का दूसरा नाम कुन्ती भी था। वह बड़ी सात्विक सुशील, धर्मात्मा सुन्दरी और गुणवती भी थी। गुणों के कारण दूर-दूर तक इसका यश फैल गया। कई राजा इसे विवाह के लिये मांगने लगे। इसलिए कुन्तिभोज ने स्वयंवर का आयोजन किया। स्वयंवर में अनेक देशों से अनेक राजा लोग पधारे। सब राजाओं को देखकर कुन्ती ने जयमाला पाण्डु के गले में डाल दी। दोनों का विधिपूर्वक विवाह हो गया। राजा पाण्डु कुन्ती को लेकर अपनी राजधानी हस्तिनापुर वापिस आ गये।

कुन्ती के साथ विवाह हो चुकने पर महात्मा भीष्म ने पाण्डु का एक और विवाह करने का निश्चय किया। जब उनका यह विचार दृढ़ हो गया तो वे मद्रराज की राजधानी में गये। मद्रराज शल्य ने भीष्म के प्रस्ताव पर अपनी बहन माद्री प्रसन्तापूर्वक उन्हें दे दी। वीर पाण्डु माद्री के साथ विवाह करके अपनी राजधानी लौट आये और दोनों स्त्रियों के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। धृतराष्ट्र और पाण्डु के विवाह हो चुकने पर भीष्म को विदुर के विवाह

की चिंता हुई । उन्होंने सुना कि राजा देवक के यहाँ एक विवाह के योग्य अति सुन्दरी और युवती दासी पुत्री है । उन्होंने उसके साथ प्रकाण्ड पंडित एवं नीतिवेत्ता विदुर जी का विवाह कर दिया । उससे विदुर के समान ही कई गुणी पुत्र उत्पन्न हुए ।

4. दानवीर कर्ण

कुन्ती का अभी विवाह भी नहीं हुआ था कि उसके एक पुत्र उत्पन्न हो गया । लोकलज्जा के कारण कुन्ती ने उसका पालन नहीं किया और उसे एक बर्तन में रख पास की नदी में प्रवाहित कर दिया । बहता-बहता वह बर्तन एक सारथी की स्त्री राधा को मिल गया । उत्सुकतावश राधा ने उस बर्तन को उठा कर खोला तो उसमें एक शिशु दिखाई पड़ा । वह शिशु को निकाल अपने घर ले गई और उसका पालन पोषण करने लगी । राधा ने उसका नाम कर्ण रखा । कर्ण का पालन पोषण राधा ने किया था इसलिये वह अपने को राधा का ही पुत्र समझता था । इस कारण कर्ण का दूसरा नाम राधेय भी था । बड़ा होने पर कर्ण बड़ा बलवान, शूरवीर एवं तेजस्वी हुआ । युद्ध विद्याओं में वह अर्जुन को छोड़कर सबसे निपुण था । अस्त्र-शस्त्र चलाने में उसके समान उस समय बहुत ही कम योद्धा थे । दान देने में कर्ण अद्वितीय था । आज तक भी दानियों के लिए कर्ण की उपमा दी जाती है ।

(1) दानवीर कर्ण की दानशीलता का पहला उदाहरण – एक बार की बात है कि इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों की सभा लग रही थी । उसमें श्री कृष्णचन्द्र जी भी उपस्थित थे । प्रसंगवश वे सभा में कर्ण की दानशीलता की प्रशंसा करने लगे । अर्जुन को उसकी प्रशंसा सहन न हुई । वे बोले–हे श्रीकृष्ण! धर्मराज युधिष्ठिर की दानशीलता में क्या कमी है जो आप उनकी उपस्थिति में कर्ण की प्रशंसा कर रहे हैं । श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि समय पर तुम स्वयं इस बात को समझ जाओगे और बात टल गई । कुछ काल बाद श्रीकृष्ण अर्जुन को साथ लेकर ब्राह्मण के वेश में पाण्डवों के राजमहल में आये और युधिष्ठिर से बोले–राजन्! मैं अपने ही हाथ से बनाया भोजन करता हूँ और मैं अपना भोजन केवल चन्दन की लकड़ी पर ही बनाता हूँ और वह चन्दन जरा भी गीला नहीं होना चाहिये । उस समय तेज वर्षा हो रही थी । युधिष्ठिर ने

राजमहल में अच्छी प्रकार से पता लगा लिया परन्तु सूखा चन्दन कहीं नहीं मिला। राजा के सेवक सूखे चन्दन की खोज में नगर में गये। किन्तु संयोग ऐसा हुआ कि जिनके पास भी चन्दन मिला सब गीला था। धर्मराज को बड़ा दुःख हुआ किन्तु उपाय कुछ भी नहीं था।

श्रीकृष्ण और अर्जुन उसी वेश में वहाँ से सीधे कर्ण की राजधानी में पहुँचे। कर्ण से भी उन्होंने वही बात कही। सूखा चन्दन कर्ण के राजमहल में भी नहीं था और नगर में भी नहीं मिला। सेवकों से नगर में भी सूखा चन्दन न मिलने की बात सुनकर कर्ण घबराया नहीं, उसने तत्काल अपने धनुष पर बाण चढ़ाया। राजभवन के मूल्यवान द्वार चन्दन के बने थे। अनेक पलंगों के पाये चन्दन के थे और कई दूसरे सामान भी चन्दन की लकड़ी से बने हुए थे। अपने बाणों से कर्ण ने उन सबको चीरकर इकट्ठा करवा लिया और ब्राह्मण अतिथि से बोला—भगवन्! सूखा चन्दन उपस्थित है, आप सहर्ष अपना भोजन बनाइये। आतिथ्य प्रेम के भूखे श्रीकृष्ण उसे कैसे छोड़ देते वहाँ से तृप्त होकर वह बाहर आ गये। कर्ण के राजभवन से बाहर आकर वे अर्जुन से बोले—अर्जुन! तुम्हारे राजभवन में भी द्वार आदि सब चन्दन के ही हैं और उन्हें देने में पाण्डव कंजूस भी नहीं हैं। किन्तु जिसके प्राण दान, धर्म के लिये हैं उसी को समय पर याद आता है कि कोई पदार्थ कहाँ कैसे लेकर दिया जाता है।

(2) दानवीर कर्ण की दानशीलता का दूसरा उदाहरण – कर्ण को अजेय कवच-कुण्डल प्राप्त थे। उन दिनों कर्ण अंगदेश का राजा था। एक दिन इन्द्र दीनहीन ब्राह्मण का रूप बना कर भिक्षा माँगते हुए कर्ण के सामने पहुँचे। वह पहले से सावधान था कि इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर तुम से कवच-कुण्डल की भिक्षा माँगेगा। उस दीन हीन ब्राह्मण पर दृष्टिपात के साथ ही कर्ण सब बात समझ गया। जब ब्राह्मण ने कवच-कुण्डल की भिक्षा माँगी तो उसने सहर्ष उतारकर उन्हें दान में दे दिया। इन दानशीलता से इन्द्र स्वयं चकित रह गये और धन्य! धन्य! कह उठे।

(3) दानवीर कर्ण की दानशीलता का तीसरा उदाहरण – जिस दिन कर्ण युद्धभूमि में गिरा, सायंकाल शिविर में लौटकर खिन्नमुख बैठै श्री कृष्ण कह

रहे थे—आज दानशीलता का सूर्य अस्त हो रहा है। श्रीकृष्ण को इस अवस्था में देख अर्जुन ने पूछा—"भगवन्! उदास हो, कर्ण में इतनी महानता क्या है?"

श्रीकृष्ण उठे और बोले—चलो, उस महाप्राण के अन्तिम दर्शन कर आयें, तुम दूर से ही देखते रहना। उन्होंने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया और वहाँ पहुँच गये जहाँ रक्त से कीचड़ बनी, शवों से पटी, छिन्न भिन्न अस्त्र-शस्त्रों से पूर्ण युद्ध भूमि में रात्रिकाल में शृंगाल आदि घूम रहे थे और वहाँ कर्ण मरणासन्न अवस्था में पड़ा था। वृद्ध ब्राह्मण ने पुकारा—'महादानी कर्ण' पीड़ा से कराहते हुए कर्ण ने किसी प्रकार कहा—मैं यहाँ हूँ। 'तुम्हारा सुयश सुनकर अति स्वल्प इच्छा की आशा से आया था' ब्राह्मण ने कहा। कर्ण बोला—'आप मेरे घर पधारें। 'जाने दो, इधर-उधर भटकने की शक्ति मुझमें नहीं है' ब्राह्मण ने रुष्ट होकर कहा। 'मेरे दांतों में स्वर्ण लगा है, आप इन्हें तोड़ कर ले लें।' कर्ण ने कुछ सोच कर कहा। "छि! ब्राह्मण यह कर्म करेगा।' ब्राह्मण और भी रुष्ट हो गये। इस पर कर्ण किसी प्रकार खिसके! उन्होंने पास ही पड़े एक शस्त्र पर अपना मुख पटक दिया। शस्त्र से टूटे दांतों का स्वर्ण निकाला, किन्तु रक्त-युक्त स्वर्ण ब्राह्मण कैसे ले! कर्ण में तो धनुष चढ़ाने की भी शक्ति नहीं थी। फिर भी मरणासन्न, अत्यन्त असहाय कर्ण ने हाथ तथा घायल मुख से धनुष चढ़ा कर और वरुणास्त्र के द्वारा वहाँ जल प्रकट कर स्वर्ण धोया और ब्राह्मण को दान में दे दिया। तभी श्रीकृष्ण ने अपना रूप प्रकट कर दिया।

(4) दानवीर कर्ण की दानशीलता का चौथा उदाहरण – कर्ण प्रतिदिन सवा मन सोना दान किया करता था। परन्तु इतना दान देने के पश्चात् उसके पास भी अपना कुछ न कुछ अवश्य रह जाता था।

5. महाराज पाण्डु के द्वारा वन में तपस्या

महाराजा पाण्डु के समय राज्य में बड़ी शान्ति थी। कोई बलवान किसी निर्बल पर अत्याचार नहीं कर सकता था। प्रजा बहुत सुखी थी। दिग्विजय करने के पश्चात् पाण्डु अपनी दोनों रानियों के साथ वन में रहने लगे। उन्हें वन के दृश्य देखने और एकांत में रहने से प्रेम था। हिमालय पर्वत की तराई

में अत्यन्त मनोहर वन में, पाण्डु ने अपना निवास स्थान बना लिया। उसके पीछे राज्य का सारा काम धृतराष्ट्र की आज्ञा से होता था। वन में रहते-रहते महाराजा पाण्डु का मन संसार से हटने लगा, और वे एक प्रकार से विरक्त हो गये। रात-दिन भगवान् की भक्ति और धर्मचर्चा में ही रहने लगे। इनका शरीर बहुत निर्बल हो गया। पाण्डु एक दिन वन में अपनी पत्नियों के साथ घूम रहे थे कि तभी उनकी नजर हिरण के एक जोड़े पर पड़ी। बस, फिर उन्होंने आव देखा न ताव और उन पर तीर चला दिये। वस्तुतः हिरण के जोड़े के रूप में स्वयं किदम्ब मुनि और उसकी पत्नी थी। तीर लगते ही दोनों अपने वास्तविक रूप में आ गये। किदम्ब मुनि ने राजा को शाप देते हुए कहा–

राजन्! तुमने हमें मार कर बहुत बड़ा पाप किया है। इसलिये मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम जब कभी भी अपनी पत्नी के पास जाओगे तो तुम्हारी तुरंत मृत्यु हो जाएगी।

मुनि की बात सुनकर पाण्डु ने वन में तप करने का निश्चय किया। एक दिन उन्होंने अपने सेवकों और सब साथियों को बुलाकर कहा–तुम सब यहाँ का सामान लेकर हस्तिनापुर लौट जाओ। वहाँ जाकर पितामह भीष्म, धृतराष्ट्र और गान्धारी से कहना कि पाण्डु वन में चले गये हैं। अब वे वापिस नहीं आयेंगे। उनके लिए कोई चिन्ता न करे। महाराज पाण्डु की बात सुनकर सब साथी दुःखी हुए और रोने लगे। रानियाँ पाण्डु के पैरों में गिर कर रोने लगी। बोलीं– महाराज! हम तो आपके चरणों की दासी हैं। हमारा क्या अपराध हुआ है जो हमें हस्तिनापुर भेजते हैं। यदि आप अपने साथ न ले चलेंगे तो हम यहीं आपका नाम लेकर प्राण त्याग देंगी। रानियों की दृढ़ भक्ति को देखकर पाण्डु ने उन्हें साथ ले लिया और नौकर-चाकर, साथी, ब्राह्मण आदि सब हस्तिनापुर चले गये। उन्होंने हस्तिनापुर पहुँच कर पाण्डु का सब समाचार धृतराष्ट्र से कह सुनाया। धृतराष्ट्र यह सुनकर बहुत दुःखी हुए।

6. युधिष्ठिर आदि का जन्म

पाण्डु अपनी पत्नियों के साथ एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर घूमते रहे। वे केवल कंद मूल फल खाकर रहते। ऊँची-नीची जमीन पर सो लेते, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनका ध्यान रखते थे। अन्त में वे शतशृंग पर्वत पर तपस्या करने

लगे। वहाँ के ऋषि-मुनि और महात्मा सभी उनसे बड़ा प्रेम करते थे। महात्मा पाण्डु भी सबकी सेवा करते, मन और इन्द्रियों को वश में रखते तथा कभी घमण्ड नहीं करते थे। कोई ऋषि पाण्डु को अपना भाई मानते, कोई पुत्र और कोई मित्र मानकर उनकी रक्षा का ध्यान रखते थे। इसी प्रकार पाण्डु की तपस्या होने लगी। पाण्डु को संसार से वैराग्य हो गया था, किन्तु फिर भी एक दिन रानियों ने महात्मा पाण्डु से प्रार्थना की कि महाराज! सन्तान न होने के कारण आप का नाम संसार से मिट जायेगा। रानियों की इच्छा समझ कर पाण्डु ने उन्हें सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दे दी। पाण्डु बहुत निर्बल थे और उनका मन भोग-विलास से दूर हट चुका था। इसलिए रानियों ने पाण्डु से सन्तान उत्पन्न नहीं की। किन्तु नियोग प्रथा द्वारा ही पुत्र पैदा किए। कुन्ती ने धर्मराज के संयोग से युधिष्ठिर को जन्म दिया। दूसरा पुत्र भीमसेन पवन के संयोग से उत्पन्न हुआ। तीसरा पुत्र अर्जुन इन्द्र के संयोग से उत्पन्न हुआ था। यह बड़ा अद्वितीय धनुषधार था। कुन्ती के पुत्रों को देखकर माद्री ने भी सन्तान पैदा करना चाही। माद्री ने अश्विनी कुमार के संयोग से नकुल व सहदेव जुड़वा भाइयों को जन्म दिया। ये दोनों अत्यन्त रूपवान व विद्वान् थे। सब पुत्रों का जन्म एक-एक वर्ष बाद हुआ। जिस दिन भीमसेन का जन्म हुआ था, उसी दिन धृतराष्ट्र के सब से बड़े पुत्र दुर्योधन का भी जन्म हुआ था। महात्मा पाण्डु पांचों बालकों की बाल-क्रीडा देख-देखकर बहुत आनन्दित होते थे।

अतः जिस प्रकार नियोग प्रथा से धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर पैदा हुए थे। इसी प्रकार पांचों पांडवों –धर्मराज, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी नियोग प्रथा द्वारा पैदा हुये थे।

महर्षि दयानंद लिखते हैं –

धर्म, वायु और इन्द्र से नियोग करने पर युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन उत्पन्न हुए और इसी प्रकार अश्विनी कुमार से नियोग करने पर नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। इसमें धर्म, इन्द्र, वायु से नाम समझना चाहिए। स्पष्ट विदित है कि वायु के संसर्ग से पुत्र उत्पन्न नहीं हो सकता है।

–उपदेश मंजरी (11वाँ विषय इतिहास)

स्वयं पाण्डु ने ही अपनी पत्नियां कुन्ती और माद्री को नियोग प्रथा द्वारा संतानोत्पत्ति की आज्ञा दे दी थी। इसका मुख्य कारण यह पाण्डु अत्यधिक कमजोर हो चुके थे और उनमें सन्तानोत्पत्ति करने की क्षमता नहीं थी। यहाँ तक कि ऋषियों ने उसे सम्भोग करने से मना कर दिया था।

7. पाण्डु का निधन

एक दिन महात्मा पाण्डु अपनी दोनों रानियों और पांच पुत्रों के साथ वन में घूम रहे थे। कुन्ती पांचों बालकों को लेकर पीछे-पीछे आ रही थी, पाण्डु माद्री के साथ आगे-आगे चल रहे थे। पाण्डु माद्री के साथ अधिक प्रेम करते थे। बसन्त ऋतु थी। धीमी-धीमी शीतल और सुगन्ध वायु चल रही थी। प्रकृति की छटा अनुपम थी। माद्री के अनुपम सौन्दर्य को देखकर पाण्डु के मन में विकार पैदा हो गया। वे अपने मन को नहीं रोक सकें और कामवासना में फंस गये। महाराज पाण्डु को क्षय रोग था हिमालय के शतश्रृंग नामक शिखर पर रहते हुए उन्हें लगभग 12 वर्ष व्यतीत हो गये थे। एक दिन वसंत ऋतु में जोर पकड़ने पर रोग जाग उठा और इलाज करने पर भी पाण्डु की मृत्यु हो गई। उनकी छोटी रानी माद्री को इतना असह्य दुःख हुआ कि वह भी उसी दिन प्रभु को प्यारी हो गई। पाण्डु के वियोग का दुःख कुन्ती से न सहा गया और वह विलाप करती रही। ऋषि-मुनियों को उस पर बड़ी दया आई। उन्होंने कुन्ती और पांचों पुत्रों को हस्तिनापुर पहुँचा दिया। हस्तिनापुर मे महात्मा पाण्डु का विधिपूर्वक क्रिया कर्म किया गया।

8. दुर्योधन आदि का जन्म

महाराज धृतराष्ट्र बड़े बलवान् थे। उन्होंने गान्धारी के गर्भ से 99 पुत्र और एक कन्या पैदा की। जिस समय गान्धारी गर्भवती थी और धृतराष्ट्र की सेवा करने में असमर्थ थी, उस समय एक वेश्या कन्या धृतराष्ट्र की सेवा में रहती थी। धृतराष्ट्र ने उससे एक पुत्र उत्पन्न किया, उसका नाम युयुत्सु था। कन्या का नाम दुश्शाला था। ये सभी बड़े शूरवीर युद्धकुशल तथा शास्त्रों के विद्वान् थे। समय आने पर धृतराष्ट्र ने योग्य कन्याओं के साथ इन सबका विवाह कर दिया। दुश्शाला का विवाह जयद्रथ के साथ हुआ।

9. कौरव-पाण्डवों का बालपन

कुरु राजा के प्रताप के कारण धृतराष्ट्र और पाण्डु के वंश का नाम कुरुवंश प्रसिद्ध था। इसलिए इनकी संतान कौरव कहलाई। धृतराष्ट्र के पुत्र भी कौरव थे और पाण्डु के पुत्र भी कौरव थे। किन्तु फिर भी पाण्डु के पुत्रों को पाण्डव कहा जाता था। सब बच्चे धीरे-धीरे बड़े होने लगे। आपस में खेल कूदकर समय बिताने लगे। पांडव खुशी-खुशी दुर्योधन आदि के साथ खेलते और उनसे बढ़चढ़ कर ही रहते। दौड़ने में, निशाना लगाने में, धूल उड़ाने में भीमसेन धृतराष्ट्र के सभी बच्चों को हरा देते थे। भीमसेन चुपके से छिपकर उनका सिर पकड़ लेते और एक दूसरे से टक्कर मारते। वे दस-दस बालकों को दबाकर पानी में डुबकी लगाते और उनकी दुर्दशा करके छोड़ते।

जब दुर्योधन आदि बालक किसी वृक्ष आदि पर चढ़कर फल तोड़ते तो ये अपने पैर से वृक्ष को हिला देते। बच्चे भी फलों के साथ नीचे टपक पड़ते। भीमसेन कुश्ती में, दौड़ने में या किसी अन्य युद्ध में भी सबसे अधिक थे। भीमसेन के मन में कोई वैर विरोध नहीं था। वे केवल होड़ के कारण ऐसा करते थे। किन्तु दुर्योधन के मन में भीमसेन के प्रति विरोध उत्पन्न हो गया था। वह रात-दिन भीमसेन से जला करता था। दुर्योधन सोचने लगा कि भीमसेन बड़ा होकर कहीं हम सब को मारकर सारा राज्य स्वयं न हड़प ले इसलिए वह भीमसेन को अभी से मार डालने की योजना बनाने लगा।

एक बार दुर्योधन ने जल में खेलने की व्यवस्था की। गंगा के तट पर प्रमाण कोटि स्थान में तम्बू और खेमे लगवाये गये। वहाँ सब प्रकार का भोजन पहुँचा दिया गया। दुर्योधन ने भीमसेन के लिए विष मिलाई हुई मिठाई तैयार करवाई हुई थी। वहाँ जाकर कौरव और पांडव सब जल में खूब देर तक प्रसन्नता के साथ खेलते रहे। जल में खेलते-खेलते जब सब थक गये तब तम्बू और खेमों में आकर इच्छापूर्वक भरपेट मिठाई खाने लगे। दुर्योधन ने भीमसेन को वही विष मिली हुई मिठाई खिला दी। भीमसेन को कुछ न पता चला और खुशी-खुशी सब मिठाई खा गये। खेलने और खाने के बाद सभी भाई उन्हीं खेमों में सो गये। भीमसेन के अंग-अंग में विष फैल गया था। इसलिए वह बेहोश हो गये।

दुर्योधन के मन में तो पाप था। अतः उसे नींद कहाँ। सब सो गए

किन्तु वह जागता रहा। दुर्योधन ने मौका देखा। वह धीरे से उठा और भीमसेन को लताओं की रस्सी से बांध कर नदी में डाल आया। जब सबकी नींद खुली तो सब अपनी-अपनी सवारियों पर चढ़कर नगर की ओर चल दिये। युधिष्ठिर ने भीमसेन को बहुत ढूंढा परन्तु वह नहीं मिले। युधिष्ठिर ने सोचा कि वह पहले ही चला गया होगा। घर आते ही युधिष्ठिर से माता कुन्ती ने पूछा कि भीम कहाँ है? युधिष्ठिर की बात सुनकर कुन्ती रोने लगी और बोली—तुम शीघ्र उसका पता लगाओ। कुन्ती को दुर्योधन पर शक था। वह समझती थी कि दुर्योधन ही भीमसेन से जला करता है।

भीमसेन बहते-बहते बहुत दूर निकल गये। जल की ठण्डक से उनका विष भी कम हो गया। वे जल में बहते-बहते तट पर लग गये। भीमसेन चल फिर नहीं सकते थे। उसी समय वहाँ नाग जाति का एक सरदार किसी कार्य से वहाँ पहुँच गया। उसने भीमसेन को वहाँ देखा, वह उन्हें अपने घर ले गया और विष उतारने की दवा करने लगा। आठ दिन के बाद भीमसेन का विष सर्वथा दूर हो गया। वह नागराज से विदा मांगकर, मार्ग में फल-फूल खाते हुए अपने घर आ गये।

भीमसेन को देखते ही कुन्ती और उसके पुत्र बहुत खुश हुए। भीमसेन के वियोग का दुःख एकदम दूर हो गया। माता कुन्ती और चारों भाइयों ने भीमसेन को बहुत देर तक अपने शरीर से हर्ष के मारे लिपटाये रखा। उसके बाद भीमसेन ने दुर्योधन की दुष्टता की सारी कहानी कह सुनाई। यह सुनकर युधिष्ठिर बोले—भाई, चुप रहो! जो हुआ, सो हुआ। दुर्योधन का नाम लेने से वह हमसे और भी द्वेष करने लगेगा। अब हमें स्वयं ही सावधान होकर रहना चाहिए। कुछ देर के बाद विदुर जी भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने भी पाण्डवों को यही सलाह की। विदुर पांडवों को सदा अच्छी शिक्षा दिया करते थे। पांडव भी विदुर जी की सम्मति के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करते थे।

अध्याय 2

राजकुमारों के गुरु द्रोण

आचार्य द्रोण वेदों और शास्त्रों के विद्वान् थे। इनके पिता का नाम भरद्वाज था। महात्मा भरद्वाज वेदों के उच्च कोटि के विद्वान् थे। उन्होंने द्रोण को वेदों की शिक्षा के पश्चात् सांसारिक व्यवहार में भी निपुण बना दिया। भरद्वाज ऋषि का एक राजा मित्र था। उसके पुत्र का नाम द्रुपद था। द्रुपद भी भरद्वाज के आश्रम में आकर द्रोण के साथ विद्याध्ययन करता था। आश्रम में रहते-रहते द्रोण और द्रुपद की गहरी मित्रता हो गई। शिक्षा समाप्त होने पर द्रोण से विदा लेते समय द्रुपद ने उनसे कहा द्रोण, तुम हमारे मित्र हो। जब मैं राजा बनूंगा तब अपना आधा राज्य तुम्हें दे दूँगा। यह सुनकर द्रोण मन ही मन प्रसन्न हुए। दोनों मित्र अलग-अलग हो गये। जब द्रोण युवा हुए तब उनका विवाह कृपाचार्य की बहन कृपी के साथ हुआ। कृपी ने अश्वत्थामा को जन्म दिया। वह बड़ा बलवान व होनहार बालक था। द्रोण इतने गरीब थे कि अपनी सन्तान का पालन-पोषण भी सरलता से नहीं कर सकते थे।

अश्वत्थामा अन्य बालकों को दूध पीता देखकर जब अपनी माँ से दूध मांगता तो वह बेचारी पानी में आटा घोल कर उसे पिलाती थी। अपनी ग़रीबी से तंग होकर एक दिन द्रोण अपने बचपन के मित्र द्रुपद के पास गये। उस समय द्रुपद पांचाल देश के राजा बन चुके थे। द्रोण ने द्रुपद के पास जाकर कहा—राजन्! मैं आपका परम मित्र हूँ। आपने मुझे पहचान तो लिया ही होगा। उस की यह बात सुनकर द्रुपद चिढ़ गये। वे भौंहे टेढ़ी और आँखें लाल करके बाले—ब्राह्मण! मझे अपना मित्र बतलाते समय तुम्हें शर्म नहीं आती! राजाओं की निर्धनों से क्या मित्रता। द्रुपद की बात सुनकर द्रोण क्रोध से कांप उठे। उन्होंने मन ही मन कुछ निश्चय किया और कुरुवंश की राजधानी हस्तिनापुर में आ गये।

कृपाचार्य को यहाँ गुप्त रूप से निवास करते द्रोणाचार्य का पता तब चला जब हस्तिनापुर के राजकुमारों की गेंद कुएं में जा गिरी। युधिष्ठिर ने कुएं में से गेंद निकालने का प्रयत्न किया तो उसकी अंगूठी भी कुएं में गिर

गई । राजकुमारों ने गेंद को निकालने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु कोई उसे निकाल न सका । इतने में ही उन्होंने पास में ही बैठे हुए ब्राह्मण को देखा वह भी इन राजकुमारों को गेंद निकालते हुए देख रहे थे । वह इन राजकुमारों को बोले—तुम लोग कुएं में से एक गेंद भी नहीं निकाल सकते । देखो ! मैं तुम लोगों की गेंद अभी निकाल देता हूँ । इतना कहकर द्रोण ने भूमि पर व्यर्थ सी पड़ी कुछ सीकें उठा ली । फिर एक सींक को उन्होंने पानी में फेंका वह सींक पानी को चीरती हुई कुएं में उतरी और गेंद में धंस गई । फिर दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी इस प्रकार द्रोण ने कई सींकों को पानी में फेंका । गेंद में धुसी सींक के दूसरे छोर पर दूसरी सींक आ लगी । दूसरी सींक के छोर तीसरी सींक आ जुड़ी । इसी प्रकार सींक के ऊपर सींक जुड़ती गई । अन्ततः सींकों की यह शृंखला कुएं के ऊपर तक आ पहुँची । द्रोणाचार्य ने उन सींकों को पकड़कर बाहर खींचा और उनके साथ गेंद भी बाहर आ गई । युधिष्ठिर की अंगूठी तो केवल एक बाण में ही बाहर आ गई । अंगूठी जैसी छोटी वस्तु, वह भी पानी की गहराई में डूबी हुई, किन्तु द्रोण का बाण कुएं में घुसा और लौटकर जब ऊपर आया तो अपनी नोक में अंगूठी को भी साथ ले आया ।

यह देखकर राजकुमार आश्चर्यचकित रह गये । वे बोले हमने तो ऐसी अस्त्र विद्या और कहीं नहीं देखी । आप कृपया अपना परिचय दीजिए और हमें आज्ञा दीजिए कि हम लोग आपकी क्या सेवा करें । ब्राह्मण ने कहा—तुम यह सब बात भीष्म से कह देना, वे मुझे स्वयं ही जान जायेंगे । राजकुमारों ने ऐसे चमत्कार की चर्चा जब भीष्म से की तो उन्होंने तुरन्त ही समझ लिया कि यह अद्‌भुत ब्राह्मण द्रोण के अतिरिक्त दूसरा कौन हो सकता है । उन्होंने निश्चय किया कि अब इन राजकुमारों को द्रोणाचार्य से ही शिक्षा दिलानी चाहिये । वे तत्काल स्वयं जाकर द्रोणाचार्य को बुला लाए और उनका खूब आदर सत्कार करके उनको सब राजकुमारों को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देने के लिए सुपुर्द कर दिया । कौरवों का धन, वैभव व राज्य सब आपका ही है । द्रोणाचार्य ने यथाविधि राजकुमारों को अपना शिष्य बना लिया । वे सब उनसे शस्त्र विद्या का अभ्यास करने लगे । कौरवों और पाण्डवों में अर्जुन सबसे बढ़चढ़ कर बुद्धिमान था । वह श्रद्धा से गुरु की सेवा किया करता, गुरु भी

अर्जुन से अत्यंत प्रसन्न थे और उसे प्रेम से अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा देने लगे। द्रोणाचार्य ने रथ पर, घोड़े पर और हाथी पर युद्ध करने की नीति, गदा, तलवार चलाने की शिक्षा सब राजकुमारों को दी। अर्जुन अधिक बुद्धिमान होने के कारण इन सब विद्याओं में सब राजकुमारों में अधिक निपुण हो गया।

1. गुरुभक्त एकलव्य

द्रोणाचार्य धनुर्विद्या और अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देने के लिए बड़े सुयोग्य आचार्य थे। उनकी शिक्षा की बात शीघ्र ही देश-देशांतर में फैल गई। दूर-दूर से राजा और राजकुमार शिक्षा लेने के लिए इनके पास आने लगे। एक दिन साहस जुटा कर एकलव्य गुरु द्रोणाचार्य के आश्रम में पहुँचा और उन्हें प्रणाम कर उनसे बोला–

गुरुजी! मैं आपसे धनुर्विद्या सीखना चाहता हूँ। मैं एक भील पुत्र हूँ। क्या मुझे अपना शिष्य बनाएंगे?

गुरु द्रोणाचार्य ने उसे ध्यान से देखा और फिर कहा–

पुत्र! मैं केवल राजकुमारों और क्षत्रियों को ही शिक्षा देता हूँ। इसलिए मैं तुम्हें शिक्षा नहीं दे पाऊँगा। तुम कोई और गुरु ढूँढ लो।

एकलव्य बड़ी आशा लेकर आया था, किन्तु निराश होकर वापिस चला गया। वन में जाकर एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनाई और उसी को अपना गुरु मानकर श्रद्धा और प्रेम के साथ प्रतिदिन नियमपूर्वक स्वयं ही अस्त्र शस्त्र चलाने का अभ्यास करने लगा। धीरे-धीरे वह अस्त्र-शस्त्र विद्या में अत्यन्त निपुण हो गया। एक दिन की बात है कि सब राजकुमार शिकार खेलने के लिए अपने गुरु द्रोणाचार्य के साथ वन में गए उनके साथ एक कुत्ता भी था। वह कुत्ता घूमता-फिरता वहाँ पहुँच गया, जहाँ बालक एकलव्य अस्त्र विद्या का अभ्यास कर रहा था। उसका शरीर काला और मैला कुचैला था। उसने काला मृगचर्म धारण कर रखा था और उसके सिर पर लम्बी जटायें थीं। इस भीषण रूप को देखकर वह कुत्ता उस पर भौंकने लगा। एकलव्य ने कुत्ते को भौंकना बन्द करने के लिए सात बाण कुत्ते की ओर छोड़े जिनसे उसका मुंह भर गया उसने भौंकना बंद कर दिया। किन्तु

कुत्ते को चोट नहीं लगी। वह कुत्ता बाणों से मुंह भरे हुए ही पाण्डवों के पास आ गया। उसे देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कुत्ते के मुंह में बाण भरने वाले को ढूंढने लगे। ढूंढते-ढूंढते उन्होंने एक व्यक्ति को देखा जो लगातार बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था। पूछने पर उसने कहा कि मेरा नाम एकलव्य है, मेरे पिता का नाम हिरण्यधनु है, मेरी जाति निषाद है और मैं द्रोणाचार्य जी का शिष्य हूँ और यहाँ वन में गुरु जी का ध्यान करके स्वयं ही धनुर्विद्या का अभ्यास करता हूँ।

एकलव्य से वार्तालाप करके राजकुमार वापिस आ गये और आचार्य द्रोण के पास जाकर उन्हें एकलव्य की बात सुनाई। अर्जुन ने दुःखी मन से कहा—गुरु जी, आपने मुझे हृदय से लगाकर बड़े प्रेम से यह बात कही थी कि मेरा कोई भी शिष्य धनुर्विद्या में तुम से बढ़कर नहीं होगा। परन्तु आप का एक शिष्य एकलव्य तो अस्त्र-शस्त्र विद्या में मुझसे बढ़कर है। अर्जुन की बात सुनकर आचार्य कुछ क्षण चिन्ता में पड़ गये और फिर उन्हें साथ लेकर उसी वन में गये जहाँ एकलव्य अस्त्र विद्या का अभ्यास कर रहा था। द्रोणाचार्य को देखते ही एकलव्य का हृदय गद्‌गद् हो गया और उसने द्रोणाचार्य के चरणों में प्रणाम किया और हाथ जोड़कर विनीत भाव से बोला—हे आचार्य जी! मैं आपका शिष्य एकलव्य हूँ। इस पर द्रोण ने उससे कहा कि यदि तू मेरा शिष्य है तो गुरु दक्षिणा दे। एकलव्य ने अति नम्रता से स्वीकार किया—आप मेरे गुरु हैं, ऐसी कोई वस्तु नहीं जो गुरु को न दी जा सके। इस पर द्रोण ने आज्ञा दी कि तुम मुझे दाहिने हाथ का अंगूठा काट कर दो। गुरुभक्त एकलव्य ने तत्काल अपना अंगूठा काटकर गुरु को समर्पित कर दिया।

अब वह अंगूठे के बिना अंगुलियों से ही बाण चलाने लगा। गुरु भक्ति के कारण ही एकलव्य अस्त्र विद्या में इतना निपुण हो गया और इसी कारण उसका नाम आज तक अमर है। विद्या पढ़ने का अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद् आदि सभी को एक समान है, परमात्मा ने विद्या का अधिकार सब को बराबर दिया है, किसी को विद्या पढ़ने से वंचित नहीं रखा जा सकता। द्रोणाचार्य ने राजकुमारों के साथ एकलव्य को शिक्षा इसलिए नहीं दी कि वह एक नीच जाति में पैदा हुआ था, यह उनकी बड़ी भूल थी।

इसके बाद उन्होंने दूसरी भूल यह की कि एकलव्य का दाहिने हाथ का अंगूठा कटवाकर दक्षिणा में मांग लिया। यदि द्रोणाचार्य उसका अंगूठा न कटवाते तो वह अस्त्र विद्या में और भी निपुण हो जाता और यदि द्रोणाचार्य उसे शिक्षा दे देते तब तो वह बालक न जाने कितना निपुण हो जाता और अपना तथा अपने भारत का नाम संसार में अस्त्र विद्या में बहुत अधिक चमका देता।

2. वृक्ष की चिड़िया का निशाना

द्रोणाचार्य जब राजकुमारों को अस्त्र-शस्त्र की विद्या सिखा रहे थे तो वे कभी-कभी उनकी परीक्षा भी ले लिया करते थे। एक दिन उन्होंने लकड़ी की एक नकली चिड़िया बनवाकर उसे वृक्ष की एक शाखा पर बैठा दिया। तत्पश्चात् गुरु ने राजकुमारों से कहा—धनुष पर बाण चढ़ाकर तैयार हो जाओ, तुम्हें उस चिड़िया की आँख उड़ानी है। गुरु की आज्ञा सुनते ही सब तैयार हो गये। उन्होंने सबसे पहले युधिष्ठिर से पूछा—युधिष्ठिर! क्या तुम इस वृक्ष पर बैठी हुई चिड़िया को देख रहे हो? युधिष्ठिर ने कहा—जी मैं देख रहा हूँ। द्रोण ने उससे फिर पूछा—क्या तुम मुझे, इस वृक्ष को और अपने भाइयों को भी देख रहे हो? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—जी हाँ मैं आपको, इस वृक्ष को और अपने सब भाइयों को भी देख रहा हूँ। द्रोणाचार्य ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा—हट जाओ, तुम यह निशाना नहीं लगा सकते। इसके बाद उन्होंने दुर्योधन आदि राजकुमारों को भी एक-एक करके खड़ा किया और उनसे इसी प्रकार पूछा। उन सबने वही उत्तर दिये जो युधिष्ठिर ने दिये थे। आचार्य ने सबको धमका कर वहाँ से हटा दिया।

अन्त में अर्जुन को बुलाकर उन्होंने वही प्रश्न किये जो युधिष्ठिर आदि से किये थे। उन्होंने कहा—अर्जुन! क्या तुम इस वृक्ष को, चिड़िया को और मुझे देख रहे हो? अर्जुन ने कहा—गुरु जी, मैं चिड़िया के अतिरिक्त और कुछ नहीं देख रहा हूँ। गुरुजी ने फिर पूछा—भला बताओ तो सही, चिड़िया की आकृति कैसी है, अर्जुन ने कहा—भगवन् मैं तो केवल उसकी आँख देख रहा हूँ, आकृति का पता नहीं। अर्जुन के उत्तर को सुनकर गुरु प्रसन्न हो गये और बोले—बेटा चलाओ बाण। अर्जुन ने कहते ही बाण छोड़ा और चिड़िया की

आँख साफ हो गई । गुरु द्रोण ने प्रसन्न हो अर्जुन को छाती से लगा लिया और उसकी प्रशंसा करने लगे ।

3. शिक्षा प्रदर्शन का समारोह

द्रोणाचार्य ने सब राजकुमारों को युद्ध विद्या दे दी । अब उन्हें कुछ सिखाना शेष न रहा । एक दिन भीष्म और विदुर के पास जाकर उन्होंने निवेदन किया कि राजकुमार अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण हो गये हैं । यदि आपकी आज्ञा हो तो वे अपनी शिक्षा का प्रदर्शन करके आपको दिखायें कि उन्होंने क्या सीखा है । भीष्म ने द्रोणाचार्य की बात धृतराष्ट्र तक पहुँचा दी । धृतराष्ट्र ने अपनी स्वीकृति देते हुए विदुर के द्वारा राजकुमारों की शिक्षा के प्रदर्शन का सब प्रबन्ध करवा दिया । राज्य की ओर से बड़ा समारोह किया गया । बीच में अखाड़े और मैदान के लिए स्थान छोड़ कर चारों ओर लम्बे-लम्बे चबूतरे बनवा दिये गये और ऊँचे-ऊँचे मचान बंधवाकर रानियों के बैठने का प्रबन्ध कर दिया गया । कुछ देर में ही राजकुमारों का कौशल देखने के लिए राजा महाराजा, बन्धु-बान्धव और नगरवासी आकर अपने-अपने स्थान पर बैठ गये ।

सब तैयारी पूरी हो चुकने पर द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों का कौशल दिखाने का काम शुरू कर दिया । उनकी आज्ञा से अस्त्र-शस्त्र चलाने में सब अपनी योग्यता दिखाने लगे । भीम और दुर्योधन गदायुद्ध में ही निपुण थे । वे अपनी-अपनी गदा लेकर अखाड़े में उतरे । वे इस प्रकार लड़ रहे थे जैसे दो मतवाले हाथी लड़ रहे हों । लड़ते-लड़ते दोनों में क्रोध पैदा होने लगा । इसलिए बीच में ही गुरु जी ने उनकी लड़ाई बंद करवा दी । सब राजकुमारों के पश्चात् अर्जुन अपने शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर अखाड़े में आये । अर्जुन को देखकर दर्शकों के आनन्द का ठिकाना न रहा । जोर जोर से तालियाँ बजने लगीं और हर्ष ध्वनि होने लगी । अर्जुन ने आग्नेयास्त्र से अग्नि, वरुणास्त्र से जल, वायव्यास्त्र से वायु, पार्जन्यास्त्र से बादलों को उत्पन्न कर दिया था । अर्जुन की अद्‌भुत विद्या को देखकर दर्शकगण आश्चर्यचकित हो गये । गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्य की निपुणता देख मन ही मन प्रसन्न हुए और भीष्म, विदुर आदि सबने अर्जुन की भूरि भूरि प्रशंसा की और उसे आशीर्वाद दिया ।

4. कर्ण का अभिषेक

अर्जुन की निपुणता देखकर कर्ण अत्यन्त अभिमान के साथ द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को प्रणाम करके खड़ा हो गया और बोला—हे अर्जुन ! तुमको अपनी योग्यता पर बड़ा गर्व है, तुम समझते होंगे कि तुम्हारे जैसा और कोई नहीं है । यह तुम्हारी भूल है । मैं तुमसे भी अधिक निपुणता दिखला सकता हूँ । दुर्योधन का स्वभाव बड़ा दुष्ट था । वह पाण्डवों के वैभव को देखकर ईर्ष्या तो रखता था ही कर्ण द्वारा अर्जुन का अपमान देखकर फूला न समाया । कर्ण और अर्जुन दोनों की क्रोधभरी बातें होने लगीं । अन्त में दोनों वीर लड़ने के लिए तैयार हो गये । यह देखकर कृपाचार्य ने ऐसा कहा— हे कर्ण ! अर्जुन तो कुरु वंश का राजकुमार है । तुम भी अपने वंश और माता-पिता का नाम बताओ । क्योंकि राजकुमार छोटे कुल में उत्पन्न हुए पुरुष से युद्ध करने में अपना अपमान समझते हैं । कृपाचार्य की बात सुनकर कर्ण का सिर लज्जा से झुक गया ।

अपने मित्र को लज्जित हुआ देखकर दुर्योधन उठ खड़े हुए और कहने लगे—यदि अर्जुन राजा से ही लड़ने में अपना मान समझते हैं तो मैं अभी कर्ण को अंगदेश का राजा बना देता हूँ । यह कहकर दुर्योधन ने तत्काल पुरोहित को बुलवाकर कर्ण को अंगदेश के राज्य पर बैठा दिया । इससे कर्ण बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—राजन् ! आपने जो मेरा आदर किया । उसके बदले में मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं सदा आपकी सम्मति के अनुसार कार्य करूँगा । दुर्योधन और कर्ण पाण्डवों से क्रुद्ध होकर अखाड़े से बाहर चले गये । उस समय सूर्य भी अस्त होने वाला था । दुर्योधन के असभ्य व्यवहार से गुरुजनों का मन भी कुछ खिन्न हो गया । फिर सब उठकर अपने-अपने घर चले गये ।

5. गुरु दक्षिणा

जब कौरव और पाण्डव अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके, तब एक दिन द्रोणाचार्य के पास आए और हाथ जोड़कर गुरु-दक्षिणा मांगने के लिए प्रार्थना करने लगे । द्रोणाचार्य ने कहा—राजा द्रुपद को पकड़कर हमारे पास लाओ । यही मेरी गुरु दक्षिणा है । गुरु की आज्ञा पाते ही राजकुमारों ने पांचाल देश पर चढ़ाई कर दी । द्रुपद भी दल बल के साथ मैदान में आये । दोनों दलों में घमासान युद्ध हुआ । द्रुपद बड़े बलवान् थे । उनकी मार से कौरव मैदान

छोड़कर भागने लगे। किन्तु भीम और अर्जुन ने अधिक वीरता दिखाई। अर्जुन अपने रथ से कूदकर द्रुपद के रथ पर जा चढ़े और द्रुपद को बांधकर रथसमेत द्रोणाचार्य के पास ले आया और बोला पूज्य गुरुजी! आपकी आज्ञानुसार पांचाल राज उपस्थित है। द्रोणाचार्य पाण्डवों से बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा कल्याण हो। तुम रण में सदा विजयी हो।

इसके पश्चात् द्रोणाचार्य हंसकर राजा द्रुपद से बोले–हे द्रुपद! तुम अपने प्राणों का भय मत करो। तुमने उस दिन कहा था कि राजा के मित्र राजा ही हो सकते हैं। इस समय तो पांचाल देश के राजा हम हैं। बोलो मित्रता करोगे या नहीं? द्रुपद का सिर लज्जा से नीचे झुक गया। इसके पश्चात् आचार्य द्रोण ने कहा– अच्छा मैं आधा राज्य तुम्हें देता हूँ और आधे का स्वामी मैं रहूंगा और हम तुम समान हो गये। इसलिए अब तुम हमसे मित्रता करो। यह कहकर द्रोणाचार्य ने द्रुपद का बंधन तुड़वा दिया और उसे गले से लगाया। द्रुपद ने भी गुरु चरणों में सिर रखकर अपने अपराध की क्षमा मांगी और आधा राज्य पाकर अपने नगर की ओर लौट गये। परन्तु उनके मन में से द्रोण द्वारा अपमानित होने का दुःख दूर नहीं हुआ और वे द्रोण से सदा मन ही मन ईर्ष्या रखने लगे।

6. पाण्डवों को मारने का षडयंत्र

सब राजकुमारों मे युधिष्ठिर सबसे बड़े थे। धृतराष्ट्र ने इनको युवराज बना दिया। युधिष्ठिर धर्मात्मा थे। वे असत्य भाषण को बुरा समझते थे। अन्याय करना तो वे जानते ही नहीं थे। इस कारण सारी प्रजा के वे प्रिय थे। दुर्योधन इनसे सदा जलता था। शकुनि, दुशासन और दुर्योधन ये तीनों बड़े दुष्ट थे। इन्होंने सोचा कि हम पाण्डवों से लड़कर तो जीतेंगे नहीं, इनको किसी घर में बंद करके जला डालना चाहिये। प्रजा युधिष्ठिर को राजा बनाना चाहती थी। यह जानकर दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से कहा कि प्रजा में आपके विरुद्ध षडयंत्र रचा जा रहा है। वह आपको गद्दी से उतारकर युधिष्ठिर को राजा बनाना चाहती है। यदि वह राजा बन गया तो आपके हाथ से तो राज्य

जायेगा ही, हमारी भी दुर्गति हो जायेगी। आप पाण्डवों को राज्य से निकाल दीजिए। अतः धृतराष्ट्र को दुर्योधन की यह बात पसन्द नहीं आई और वह बोला– पुत्र युधिष्ठिर राज्य का अधिकारी है, प्रजा यदि उसे राजा बनाना चाहती है तो इसमें आपत्ति क्या है? यदि मैं पाण्डवों को निकाल दूंगा तो भीष्म, विदुर, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य– ये सब हमारे विरुद्ध हो जाएंगे, क्योंकि वे पाण्डवों से प्रेम करते हैं।

धृतराष्ट्र की शंका समाधान करते हुए दुर्योधन ने उत्तर दिया कि डरने की कोई बात नहीं, क्योंकि भीष्म पितामह तो दोनों को समान समझते हैं वे तो किसी का अनिष्ट नहीं चाहेंगे, विदुर हमारे धन से सुख भोग रहे हैं, वे हमारे विरुद्ध कैसे बोल सकते हैं। द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा हमारे पक्ष में हैं, इसलिए द्रोण भी हमारे पक्ष में ही रहेंगे और कृपाचार्य भी द्रोण के विरुद्ध नहीं जाएंगे। इसलिए आप निर्भय होकर पाण्डवों और उनकी माता कुन्ती को यहाँ से निकाल दीजिए। हम आपके प्रिय पुत्र हैं। पाण्डव हमारे दिल में कांटे की तरह चुभ रहे हैं। आप इनको निकाल देंगे तभी हमें चैन मिलेगा। धृतराष्ट्र ने सोचा कि यदि दुर्योधन की बात नहीं मानूंगा तो वह मेरा भी अपमान करेगा। इसलिए उन्होंने पाण्डवों को बुलाकर कुछ दिन वारणावत में रहने की सलाह दी। युधिष्ठिर आदि पांचों भाई धृतराष्ट्र को पिता के समान समझते और उनका आदर करते थे। उन्होंने धृतराष्ट्र के परामर्श को स्वीकार कर लिया और गुरुओं से आज्ञा लेकर माता कुन्ती के साथ वारणावत नगर को चले गये।

उस समय वारणावत में एक बहुत बड़ा मेला भरने वाला था। दूर-दूर से आकर लाखों नर-नारी उसमें सम्मिलित होते थे। पाण्डवों ने अब से पहले यह मेला कभी नहीं देखा था, इसलिए मेला देखने की उनकी इच्छा भी थी। यह अवसर दुर्योधन ने पाण्डवों को धोखा देकर मार डालने के लिए बहुत उपयुक्त समझा। उसने पुरोचन नामक शिल्पकार को पहले ही उस मेले में भेज दिया और उसे आज्ञा दी कि वह पाण्डवों के रहने के लिए एक अत्यंत सुन्दर महल लाख और गंधक आदि शीघ्र जलने वाले पदार्थों से बनाकर तैयार

कर दे। दुर्योधन का अभिप्राय यह था कि पाण्डव जब उस महल में रहेंगे तो उसमें आग लगाकर पाण्डवों को मरवा दिया जाये।

परन्तु दुर्योधन का षडयंत्र सफल नहीं हो सका। विदुर को इस षडयंत्र का भेद मालूम हो गया था। इसलिए उन्होंने उस महल में एक सुरंग बनवा दी जो दूर जंगल में निकलती थी। सुरंग की बात दुर्योधन को मालूम न हो सकी। एक रात, जब पाण्डव उस महल में सो रहे थे तो दुर्योधन ने उसमें आग लगवा दी। इस अग्निकांड को देख पांचों भाई माता कुन्ती को साथ लेकर उस सुरंग के मार्ग से जंगल में निकल गये। परन्तु उसी रात में एक स्त्री अपने पांच पुत्रों सहित आकर उसी महल में ठहर गई थी। वह स्त्री और उसके पांचों पुत्र अग्नि में जलकर राख हो गये हैं। यह देख वे मन में तो हर्षित हुए किन्तु लोकाचारवश उन्होंने शोक भी प्रकट किया। विदुर को इस घटना से कोई चिन्ता नहीं हुई क्योंकि ये तो सच्चाई जानते थे। पाण्डव जीवित बच निकले, दुर्योधन का षडयंत्र असफल रहा।

7. घटोत्कच का जन्म

पाण्डव जब सुरंग के रास्ते दूर वन में जाकर निकले तो थक जाने के कारण उस वन के एक वृक्ष के नीचे सो गये। भीम उनकी रक्षा करते रहे। उस वन में एक राक्षस रहा करता था। वह बड़ा बलवान् और भयंकर था। वह आदमखोर था। उसकी बहन का नाम हिडिम्बा था, वह भी वहीं रहती थीं। वह बड़ी बलवान् और अत्यंत सुन्दर थी। वह भीम के पास जाकर उससे बोली–

आप कौन हैं और पेड़ के नीचे सोये हुए लोग आपके कौन हैं?

भीम ने कोई उत्तर नहीं दिया तो हिडिम्बा बिना कोई भूमिका बाँधे बोली।

मैं आपसे प्रेम करने लगी हूँ और आपसे विवाह करना चाहती हूँ क्या आपको मेरा प्रस्ताव स्वीकार है?

इससे पहले कि भीम कुछ उत्तर देते हिडिम्बा का भाई हिडिम्ब उसे

खोजता हुआ पहुँचा। अपनी बहन को एक व्यक्ति के साथ प्रेमालाप करते देखकर वह क्रोध से आगबबूला होकर बोला–

तुम्हें शर्म नहीं आती, जो एक साधारण मनुष्य की ओर खिंची चली आई? क्या इतने बड़े राक्षस समुदाय में तुम्हें कोई नहीं मिला? तुमने राक्षसों का नाम मिट्टी में मिलाया है। मैं तुम्हें जान से मार दूँगा।

इतना कहकर वह जैसे ही हिडिम्बा पर झपटा वैसे ही बीच में भीम आ गए। बस फिर दोनों के बीच घमासान युद्ध होने लगा। युद्ध की आवाज़ सुनकर चारों पांडव और कुंती भी जग गए। अंततः भीम ने हिडम्ब को उठाकर जमीन पर दे मारा और भयंकर आवाज़ के साथ उसका काम तमाम कर दिया। भीम ने युधिष्ठिर और माता कुन्ती की अनुमति से उसके साथ विवाह कर लिया। उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम घटोत्कच रखा गया।

४. बकासुर का वध

घूमते-घामते पाण्डव उस वन में पहुंचे जहाँ महर्षि व्यास का आश्रम था। आश्रम में जाकर उन्होंने महर्षि को प्रणाम किया और महर्षि व्यास ने उन्हें आशीर्वाद दे एक चक्रा नगरी में जाकर रहने की सलाह दी। महर्षि व्यास जी की सलाह मान वे उस नगरी में गये और एक ब्राह्मण के घर में रहने लगे और भिक्षा मांगकर अपना निर्वाह करने लगे। इस नगरी में एक बकासुर नामक राक्षस बड़ा बलवान् रहता था। वह प्रतिदिन एक व्यक्ति को खाता था। बारी-बारी एक व्यक्ति के भोजन के लिए उस के पास जाता था।

कुछ दिन बाद, जिस ब्राह्मण के घर में ठहरे थे, उसी की बारी आई। घर में बड़ा करुणाजनक दृश्य उपस्थित हो गया। कुन्ती दौड़कर उस ब्राह्मण के पास गई और बोली–आपको क्या दुःख है। कृपया बताइए। यदि हो सकेगा तो हम भी आपके दुःख में सहायक होंगे। ब्राह्मण ने रोते-रोते उस राक्षस की सारी बात कुन्ती को सुना दी और कहा कि आज हमारी बारी है। हममें से कोई एक उसके खाने के लिए उसके पास जायेगा। उस ब्राह्मण को सांत्वना देते हुए कुन्ती ने उससे कहा कि आपने हमारे ऊपर बड़ा उपकार किया है।

अब हमें भी उसका कुछ बदला चुकाना चाहिए। हमारे पांच पुत्र हैं, उनमें एक को मैं उस राक्षस के पास भेज देती हूँ। ब्राह्मण कहने लगा—ऐसा कभी नहीं हो सकता। आप तो हमारे अतिथि हैं। आपके पुत्र को मैं अपने बदले कभी नहीं जाने दूँगा। अतिथि की सेवा करना बड़ा धर्म कहा गया है। यदि आपके पुत्र को मैंने भेज दिया तो यह मेरा महान् अपराध होगा और इस पाप से मेरा कभी छुटकारा न हो सकेगा।

परन्तु कुन्ती ने उस दुःखिया ब्राह्मण की बात न मानी और उस राक्षस का पता पूछकर भीम से कहा—पुत्र! इस ब्राह्मण की रक्षा करो। माता की आज्ञा पाकर भीम भोजन करके घूमते फिरते धीरे-धीरे उस वन की ओर चल दिये। बहुत देर हो जाने के कारण वह राक्षस भूख से व्याकुल हो रहा था। क्रोध से उसकी आँखे लाल हो रही थी और होंठ फड़फडा रहे थे। भीम को मस्ती से झूमते और धीरे-धीरे आता देखकर वह गालियाँ देता हुआ मारने को उसकी ओर झपटा। भीम उस दुष्ट की गालियाँ कहाँ सुन सकता था। उसने क्रोध में आकर उस राक्षस को मार डाला। बक के मरने का समाचार बिजली की तरह फैल गया। उसे मारकर भीम घर पर आये। उनको देखकर सब प्रसन्न हुए। राक्षस का जो भय छाया था, वह दूर हो गया।

योगेश्वर श्रीकृष्ण

अध्याय 3

योगेश्वर श्रीकृष्ण

मथुरा के राजा का नाम उग्रसेन था। उसका पुत्र कंस था। कंस बड़ा अत्याचारी था। दीन-दुःखियों को सताने में उसने कोई कमी न छोड़ी थी। यहाँ तक कि अपने पिता उग्रसेन को भी क़ैद में डालकर मथुरा का राजा बन गया। मथुरा के कुछ दूर यमुना पर गोकुल नाम का एक गांव था। वहाँ शूरसेन नामक एक जमींदार रहता था। उसके पास गाय-बैल बहुत थे। दूध और घी बहुत होता था। किसी बात की कमी नहीं थी। अपने गुणों के कारण वह आसपास प्रसिद्ध हो गया था। उसके पुत्र का नाम वासुदेव था। वह भी अपने पिता के समान ही धर्मात्मा था। कंस के चाचा देवक की एक लड़की थी। उसका नाम देवकी था। जब वह विवाह के योग्य हुई, तब कंस ने अपने चाचा को सलाह दी कि देवकी का विवाह वासुदेव के साथ कर दे। देवक ने यह संबंध स्वीकार कर लिया और उसने देवकी का विवाह वासुदेव के साथ कर दिया। विवाह के बाद बारात विदा हो रही थी उस समय कंस अपनी बहन को पहुँचाने गया।

कुछ विद्वानों का विचार है कि जब कंस अपनी बहन देवकी और वासुदेव को रथ में बैठा कर छोड़ने जा रहा था। तभी आकाश वाणी सुनाई दी कि देवकी का आठवाँ बच्चा तेरा वध करेगा। परन्तु मेरा विचार है कि कंस जैसे दुराचारी एवं अत्याचारी व्यक्ति को अभिमान के कारण कोई भी आकाशवाणी नहीं हो सकती। वस्तुतः कंस के किसी गुप्तचर ने आकर उसे सूचना दे दी थी कि वासुदेव सारे क्रांतिकारियों का सरदार है। आप को सिंहासन से उतारकर आपके पिता उग्रसेन को राज्य सौंपना चाहता है। इस बात पर कंस को भी विश्वास हो गया। उसे उसी समय क्रोध आ गया और वह देवकी एवं वासुदेव दोनों को मारने लगा कि न ये रहेंगे और न ही इनकी सन्तान होगी। लोगों ने उसको बहुत समझाया पर वह नहीं माना। अंत में जब वासुदेव ने उसे यह विश्वास दिलाया कि हमारी जो भी सन्तान होगी, मैं उसे तुम्हें सौंप दिया करूँगा तब उसका क्रोध कुछ शान्त हुआ। फिर भी उसने

सोचा कि सम्भव है यह अपनी संतान मुझे न दे इसलिए कंस ने देवकी और वासुदेव को कैद में डाल दिया ।

एक-एक करके देवकी के 6 सन्तानें हुई । वे सब वसुदेव ने कंस को दे दी और कंस ने उन्हें मार डाला । हर बार माता-पिता दोनों और विशेष रूप से माता के मन का संताप बढ़ता गया । यहाँ तक कि सातवीं बार गर्भ धारण किया तो शोक एवं संताप के तीव्र आवेग से गर्भपात हो गया । देवकी बिलख पड़ी और बेहोश हो गई । समय आने पर आठवाँ पुत्र भी अष्टमी की रात्रि के बारह बजे पैदा हुआ । इस बालक के जन्म तक कंस वासुदेव के 7 बच्चों को मार चुका था और कंस प्रजा पर बहुत अत्याचार भी करता था । इस कारण जेल के पहरेदार कंस के अत्याचार से अत्यधिक दुःखी थे और उन्हें भी देवकी के प्रति सहानुभूति हो चुकी थी । इस कारण कंस का वध करने के लिए सभी पहरेदार श्रीकृष्ण को बचाना चाहते थे । अतः बालक का जन्म होते ही उन्होंने एक गुप्त योजना के अनुसार वासुदेव की हथकड़ियां और जेल के द्वार खोल दिये थे न कि वासुदेव की हथकड़ियां और जेल के द्वार स्वतः ही खुल गये जैसे कि अनेक पौराणिक भाई मानते हैं । क्योंकि ये प्रकृति और वेद विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य एवं असंभव है । श्री ईश्वरी प्रसाद प्रेम लिखते हैं—

> **कृष्ण जन्म समय जेल के फाटकों का स्वतः खुल जाना कृष्ण के चरण स्पर्श से यमुना जल का उतर जाना ये सभी वर्णन काव्यगत अलंकार और मानव मनोविज्ञान की विविध भूमिकाओं से अधिक कोई अर्थ नहीं रखते ।**
>
> —शुद्ध कृष्णायन पृ० 204

वसुदेव को चिन्ता थी कि उसकी रक्षा किस प्रकार की जाये । गोकुल में उसका एक अभिन्न मित्र नन्द रहता था । वह भी बड़ा जमींदार था । दूध घी की कमी नहीं थी । उसके पास भी गायें बहुत थी । वासुदेव रात्रि में ही किसी प्रकार जेल से निकल भागे और भीषण तूफान में भी यमुना पार करके गोकुल में नन्द के पास पहुँच गये । उसी रात नन्द के भी एक लड़की पैदा हुई थी ।

नन्द की स्त्री का नाम यशोदा था । यशोदा ने अपनी लड़की वसुदेव को

दे दी और वसुदेव का लड़का अपने पास रख लिया। इस प्रकार नंद बाबा और यशोदा ने अपनी पुत्री का बलिदान देकर राष्ट्र हित के लिये एक महान् कार्य किया और इस महान् बलिदान को राष्ट्र सदा याद रखेगा। वासुदेव उसी रात ही गोकुल से वापिस मथुरा जेल में चले गये और प्रातः होते ही बच्चा पैदा होने का समाचार कंस को मिल गया। कंस बड़े हर्ष के साथ आया और उसने उस लड़की को उठाकर धरती पर पटक दिया। उसी समय कंस के हृदय में आवाज़ हुई कि मुझे मारने वाला तो पैदा हो चुका है। तभी से कंस चिंतित रहने लगा और उस बालक की खोज करने लगा। गोकुल में प्रातः होते ही खुशी के बाजे बजाये गये, बधाई के गीत गाये गये और ग़रीबों को अन्न वस्त्र बाँटे गये। यशोदा ने बड़े लाड़ प्यार से उस बालक का पालन किया। उनका नाम कृष्ण रखा गया। उस बालक को दूध दही खाने का बहुत शौक था। वह खूब खाता पीता और ग्वालों के बालकों के साथ खेलता था। उसका शरीर बहुत बलवान् हो गया। वह बचपन से ही बड़ा वीर था। कंस को कृष्ण का पता लगा तो उसने उसे मारने के कई उपाय किये। किन्तु सब व्यर्थ हुए। कृष्ण सदा सबका भला चाहते थे। दुःखियों की रक्षा करते थे।

इसलिए सब गोकुलवासी इनसे प्रेम करने लगे और यह चाहने लगे कि श्रीकृष्ण गोकुल से कभी न जायें। जब श्रीकृष्ण कुछ बड़े हुए तो नंद ने सोचा कि श्रीकृष्ण जैसा वीर और बलवान् है वैसा ही विद्वान् भी होना चाहिये। इस विचार से उन्होंने श्रीकृष्ण को काशी के संदीपन ऋषि के आश्रम में विद्याध्ययन के लिए भेज दिया। सन्दीपन ऋषि के आश्रम में धनी और निर्धन सभी प्रकार के सैंकड़ों छात्र विद्या पढ़ते थे। उनमें सुदामा नाम का भी एक छात्र था। वह बहुत निर्धन था। कृष्ण की उससे मित्रता हो गई। दोनों सदा साथ-साथ रहते थे। एक दिन गुरु ने दोनों को वन में लकड़ियां लेने भेज दिया। वहाँ बहुत जोर से आँधी आई और मूसलाधार वर्षा होने लगी। दोनों वृक्ष के नीचे सिकुड़ कर बैठ गये और सर्दी से कांपने लगे। सुदामा ने अपने वस्त्र उतारकर श्रीकृष्ण को उड़ाये और श्रीकृष्ण ने अपने वस्त्र सुदामा को। रात भर दोनों उसी वृक्ष के नीचे रहे। प्रातःकाल होते ही लकड़ियां लेकर गुरु

की सेवा में पहुँचे। अब से उन दोनों की मित्रता और बढ़ गई। दोनों साथ-साथ ही रहने और पढ़ने लगे। शिक्षा समाप्त करके दोनों अपने-अपने घर चले गये।

श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई बलवान् और विद्वान् थे। चारों ओर उनकी धाक जमी हुई थी। कंस ने सोचा कि श्रीकृष्ण इस प्रकार मारे नहीं जायेंगे। उन्हें यहाँ बुलाकर ही किसी प्रकार मारना चाहिए। श्रीकृष्ण को बुलाने के लिए अक्रूर को भेजा गया। अक्रूर बहुत सज्जन थे, वे श्रीकृष्ण को ले जाना नहीं चाहते थे। किन्तु कंस के भय से उन्हें ऐसा करना ही पड़ा। श्रीकृष्ण अक्रूर और बलराम कंस के दरबार में गये। वहाँ कंस के योद्धाओं के साथ भयानक युद्ध हुआ। अन्त में श्रीकृष्ण ने कंस को मार डाला। कंस की मृत्यु से सब ओर प्रसन्नता छा गई। सब कैदी छोड़ दिये गये और उग्रसेन को फिर सिंहासन पर बैठा दिया गया। राजा उग्रसेन पहले के समान धर्मपूर्वक राज करने लगे। कंस की मृत्यु से उसके ससुर जरासन्ध को बड़ा दुःख हुआ। वह श्रीकृष्ण और बलराम से उसका बदला लेना चाहता था। उसने कई बार उस पर चढ़ाई की और युद्ध किए। परन्तु प्रत्येक बार उसे हारना पड़ा। श्रीकृष्ण ने सोचा कि यहाँ रहने से प्रजा को कष्ट होता है और व्यर्थ ही इसका नाश होता हैं इसलिए यह स्थान छोड़ देना चाहिए। यह विचार कर श्रीकृष्ण मथुरा से द्वारकापुरी चले गये। उसी को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया और वहाँ रहने लगे। श्रीकृष्ण विद्वान्, धर्मात्मा, न्यायकारी और राजनीतिज्ञ राजा थे। इनका यश चारों ओर फैल रहा था।

एक निर्धन ब्राह्मण सुदामा बचपन में इनका मित्र था। अब उसका विवाह भी हो चुका था। किन्तु वह पहले के समान ही निर्धन था। उसके शरीर पर वस्त्र नहीं, पैरों में जूता नहीं और भरपेट खाने का अन्न नहीं। एक दिन सुदामा की स्त्री ने उससे कहा कि पतिदेव! तुम अपने मित्र श्रीकृष्ण की बहुत कथाएं सुनाया करते हो, उन्हें अपना मित्र बताते हो। वह राजा हैं। तुम उनके पास जाओ तो सही, सम्भव है वह इस समय हमारी कुछ सहायता कर दें और हमारी ग़रीबी दूर हो जायें। सुदामा बोला—प्रिये! हमने आज तक किसी की सहायता नहीं की है। हमारी सहायता कोई क्यों करेगा? अपनी स्त्री

के बहुत समझाने बुझाने पर सुदामा श्रीकृष्ण से मिलने के लिए द्वारकापुरी चल दिये। चलते समय उसकी स्त्री ने एक फटे पुराने कपड़े की पोटली में थोड़े से कच्चे चावल बांध दिये। सुदामा ने वह पोटली बगल में दबा ली और फटे कपड़ों में नंगे पैर चलते-चलते द्वारकापुरी पहुँचे। तब उन्होंने द्वारपाल से श्रीकृष्ण का पता पूछा और अपना नाम सुदामा बताया। द्वारपाल ने अन्दर जाकर श्रीकृष्ण जी से कहा।

सुदामा का नाम सुनते ही श्रीकृष्ण भागकर आये और बड़े प्रेम से उनके साथ मिले। श्रीकृष्ण का हृदय हर्ष से विभोर हो गया। अपने साथ ले जाकर सुदामा को राज सिंहासन पर बिठाया, श्रीकृष्ण ने उनके चरण स्वयं अपने हाथों से धोये और उनको स्नानादि कराने के बाद स्वच्छ वस्त्र पहनाये। उनका बहुत आदर सत्कार किया। इससे पूर्व श्रीकृष्ण ने सुदामा से पूछा—भाभी ने हमारे लिए क्या भेजा? सुदामा बोले—हम निर्धनों के पास क्या है, जो आप जैसे राजाओं के लिए ला सकें? ऐसा कहते-कहते शर्म के साथ सुदामा चावलों की पोटली छिपाने लगा। किन्तु श्रीकृष्ण समझ गये थे कि पोटली में अवश्य कुछ है और शर्म के कारण वह नहीं दे रहे हैं। दोनो में छीना झपटी होने लगी। पोटली का कपड़ा बहुत पुराना था। वह फट गया और चावल भूमि पर बिखर गये। श्रीकृष्ण ने उन्हें चुगचुगकर बड़े प्रेम से कच्चे ही खाना आरम्भ कर दिया।

बहुत दिनों के बाद मिलने के कारण श्रीकृष्ण ने कई दिनों तक सुदामा को अपने महलों में ठहराया। उनसे बाल्यकाल की सब बातें करके वह पुरानी मित्रता उन्हें याद हो आई। श्रीकृष्ण ने सुदामा की बहुत सहायता की। अन्न, वस्त्र व धन दिया। उनके मकान भी पक्के बनवा दिये। सुदामा को अब किसी प्रकार की कमी न रही। श्रीकृष्ण ने इस बात की चिन्ता नहीं की कि अब वे राजा हैं और सुदामा एक निर्धन ब्राह्मण। उन्होंने अपनी बाल्यकाल की मित्रता नहीं भुलाई। सच्ची मित्रता इसी को कहते हैं। श्रीकृष्ण का सारा जीवन सज्जनों की रक्षा, दुष्टों के नाश और धर्म की स्थापना के लिए ही व्यतीत हुआ उन्होंने अपने सुख के लिए कोई कार्य नहीं किया। उनके सब काम परोपकार के लिए होते थे।

1. द्रौपदी का स्वयंवर

बकासुर को मारने के बाद पाण्डव वेदाध्ययन करते हुए उसी ब्राह्मण के घर में रहने लगे। कुछ दिनों के बाद उसके यहाँ एक सदाचारी ब्राह्मण आया। पाण्डवों को उससे द्रौपदी के जन्म की कथा और उसके स्वयंवर की कथा मालूम हुई। स्वयंवर का समाचार सुनकर पाण्डवों का मन बेचैन हो गया। उनकी व्याकुलता और द्रौपदी के प्रति प्रीति देखकर कुन्ती ने कहा—तुम्हारी इच्छा हो तो पांचाल देश में चलें। सब भाइयों ने स्वीकृति दे दी और जाने की तैयारी आरम्भ हो गई। उसी समय महर्षि वेदव्यास ही पाण्डवों से मिलने के लिए एकचक्रा नगरी में आये। सब उनके चरणों में प्रणाम करके हाथ जोड़ खड़े हो गये। तत्पश्चात् पाण्डवों ने महर्षि वेदव्यास की आज्ञा से पांचाल देश की यात्रा की। जब अपनी माता के साथ पाँचों भाई द्रुपद देश की ओर जा रहे थे, तब मार्ग में उन्हें अनेक ब्राह्मणों के दर्शन हुए। वे भी पांचाल देश में द्रौपदी का स्वयंवर देखने जा रहे थे। सब साथ-साथ चलने लगे।

नगर में पहुँचकर पाण्डवों ने ब्राह्मण के घर अपना डेरा जमाया। वहाँ वे भी ब्राह्मणों की तरह अपना जीवन बिताने लगे। स्वयंवर का दिन आ गया। सभा मंडप बनाया गया। अनेक प्रकार से उसे सजाया गया। सबके बैठने के लिए यथायोग्य स्थान बनाये गये। स्वयंवर में भाग लेने के लिए देश-विदेश के राजा, महाराजा और राजकुमार आये थे। दुर्योधन, कर्ण, श्रीकृष्ण और शिशुपाल आदि भारतवर्ष के सारे राजे राजसभा में विराजमान थे। सब अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये। पाण्डव भी ब्राह्मणों की मंडली जा बैठे। जब सब अपने-अपने आसन पर बैठ चुके, तब द्रौपदी के भाई धृष्टधुमन ने घोषणा की कि स्वयंवर के लिए आये राजाओं तथा राजकुमारों, आप लोग ध्यान देकर सुने। यह धनुष है, और ये बाण हैं, और यह आप लोगों के सामने लक्ष्य है। आप लोग घूमते हुए छिद्र में से अधिक से अधिक पाँच बाणों द्वारा लक्ष्य बेध कर दें।

जो पुरुष यह महान् कार्य करेगा, मेरी बहिन द्रौपदी उसी के गले मे वरमाला डालेगी।

इसके पश्चात् धृष्टद्युमन ने वहाँ उपस्थित सब राजाओं और राजकुमारों का परिचय द्रौपदी को दिया। एक-एक करके सब राजकुमार उठे और हार मानकर बैठ गये। दुर्योधन आदि को निराश देखकर कर्ण उठा। धनुष के पास जाते ही उसने डोरी चढ़ा दी। वह क्षण भर में ही लक्ष्य को भेद देता किन्तु द्रौपदी जोर से बोल उठी—मैं सूतपुत्र को नहीं वरुँगी। कर्ण ने धनुष को नीचे रख दिया। शिशुपाल, जरासन्ध, शल्य आदि सबकी वही दशा हुई। अर्जुन के चित्त में यह संकल्प उठा कि अब मैं लक्ष्यबेध करूँ। अपने बड़े भाई युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन उठे। इस ब्राह्मण को देखकर सब आश्चर्य करने लगे। कोई तो इसके साहस की प्रशंसा करने लगा और कोई हँसी उड़ाने लगा। अर्जुन ने धनुष उठाया और पता भी न चला कि लक्ष्य वेध दिया। घूमते हुए चक्र के मध्य में से जाकर अर्जुन का बाण ऊपर लटकी हुई मछली की आँख में चुभ गया। द्रौपदी ने माला तत्काल अर्जुन के गले में डाल दी। यह देखकर सब राजा क्रोधित हो उठे। वे कहने लगे द्रुपद ने हमारा अपमान किया है। वह हमारे रहते हुए ब्राह्मण के साथ अपनी कन्या का विवाह करना चाहता है। सब मिलकर द्रुपद को मार डालो। यह कह कर वे द्रुपद पर आक्रमण करने लगे। डर के मारे द्रुपद ब्राह्मणों की शरण में आये।

ब्राह्मणों ने कहा हम सब राजाओं का संहार कर डालेंगे। अर्जुन ने सबको शांत करके कहा— आप शान्ति से बैठै रहिए। मैं अकेला ही अपने बाणों से सबको छिन्न भिन्न कर डालूँगा। राजाओं ने लड़ाई आरम्भ कर दी। बहुत घमासान युद्ध हुआ, किन्तु अर्जुन और भीम ने सबको मजा चखा दिया। राजा लोग हारकर अपना सा मुँह लिए अपने-अपने डेरों पर चले गये। युधिष्ठिर तो नकुल और सहदेव को लेकर पहले ही अपने डेरों पर चले गये थे। अब अर्जुन और भीम भी ब्राह्मणों से घिरे हुए द्रौपदी को साथ लेकर अपने निवास स्थान पर चल पड़े। माता कुन्ती अर्जुन और भीम के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। उसी समय तीसरे पहर भीमसेन और अर्जुन द्रौपदी को साथ लिए हुए अपने घर आ गये। द्वार से ही अर्जुन ने कहा—माँ आज हम यह भिक्षा लाए हैं। कुन्ती ने बिना देखे ही उत्तर दिया—तुम सब मिलकर भोग करो। कुन्ती ने बाहर आकर जब द्रौपदी को देखा, तब वह चिन्ता करने लगी

और कहने लगी कि मैंने यह क्या बात कह दी। उसने युधिष्ठिर से सलाह ली। शेष चारों भाइयों के साथ भी विचार किया। युधिष्ठिर सबसे ज्येष्ठ था। इसलिए सर्वसम्मति से द्रौपदी युधिष्ठिर को सौंप दी गई और उसकी पत्नी बनकर रहने लगी।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलराम के साथ पाण्डवों के निवास स्थान पर आये और उन्हें बधाई देते हुए अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। युधिष्ठिर ने जब श्रीकृष्ण से पूछा कि हम तो यहाँ छिपकर रह रहे थे। आपने हमें कैसे पहचान लिया तो श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि क्या लोग छिपी हुई आग को नहीं ढूंढ लेते। यह बड़े आनन्द की बात हुई कि दुर्योधन की अभिलाषा पूर्ण न हुई और आप लोग लाक्षागृह से निकल आये। आपस में वार्तालाप के बाद श्रीकृष्ण और बलराम पाण्डवों से विदा ले वापिस चले गये। राजा द्रुपद को अभी तक यह नहीं ज्ञात हो सका कि द्रौपदी को जीतकर कौन ले गया। द्रुपद की आज्ञा से उसका पुत्र धृष्ठुमन उसका पता लगाने के लिए निकला और उसने गुप्त रूप से पाण्डवों का भेद ले लिया और जाकर सब समाचार द्रुपद को कह सुनाया। द्रुपद की प्रबल अभिलाषा हुई कि पाण्डवों का परिचय प्राप्त करना चाहिये। अतः उसने अपना एक दूत युधिष्ठिर के पास भेजा। उसने आकर प्रार्थना की कि – महाराज द्रुपद ने आप लोगों के लिए भोजन तैयार करवा लिया है। आप सब द्रौपदी के साथ वहाँ चलिये।

राजा द्रुपद का निमन्त्रण स्वीकार कर पांचों भाई माता कुन्ती और द्रौपदी के साथ राजभवन के लिए चल पड़े। राजा द्रुपद ने अच्छी प्रकार उनका स्वागत किया। माता कुन्ती और द्रौपदी तो विश्राम करने रनिवास में गई और पांचों भाई एक दूसरे कमरे में। बड़े प्रेम और आदर भाव के साथ उन्हें भोजन कराया गया। भोजन के पश्चात् उनका परिचय प्राप्त करने की इच्छा से द्रुपद ने युधिष्ठिर को बुलाया और परिचय प्राप्त करना चाहा। युधिष्ठिर ने बताया कि मैं महात्मा पाण्डु का ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर हूँ। मेरे चारों भाई भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव वहाँ बैठे हैं और मेरी माता कुन्ती राजकुमारी द्रौपदी के साथ रनिवास में आराम कर रही है। पाण्डवों का परिचय प्राप्त कर राजा द्रुपद बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने द्रौपदी का विधिवत्

विवाह कराने का आयोजन किया। राजा की विनय सुनकर धौम्य ऋषि राजभवन में पधारे और उन्होंने शास्त्रविधि से द्रौपदी का विवाह ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर के साथ वेदमंत्रों के उच्चारण के साथ करवा दिया। विवाह के बाद द्रुपद ने बहुत से रत्न, धन और श्रेष्ठ सामग्रियाँ दहेज में दी तथा उत्तम जाति के घोड़ों से जुते सौ रथ, सौ हाथी, वस्त्र आभूषण आदि प्रत्येक पाण्डव को भेंट किये।

इसके पश्चात् हस्तिनापुर कुछ समय रहने के बाद युधिष्ठिर ने शैव्य के राजा गोवासन की देविका से स्वयंवर विवाह किया और इससे यौधेय नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार स्वयंवर विवाह में भीम का बलन्धरा से, नकुल का करेणुमती से और सहदेव का विजया से हुआ।

नोट– **कुछ विद्वानों का विचार है कि द्रौपदी को अर्जुन ने स्वयंवर में जीता था। अतः उसका विवाह अर्जुन से ही हुआ था। यदि ऐसा उचित माना जाये तो युधिष्ठिर द्रौपदी को कैसे जुए में लगा सकता था। इसलिए यह तर्कसंगत नहीं है।**

अध्याय 4

पाण्डवों को आधा राज्य

दुर्योधन आदि को जब मालूम हुआ कि पाण्डव लाक्षागृह में जलकर मरे नहीं है, उनका षडयंत्र सफल नहीं हुआ है । पाण्डव तो स्वस्थ और जीवित हैं, वे पांचाल देश में सुखपूर्वक रह रहे हैं, तो वे बड़े लज्जित हुए । उनके मन में शंका पैदा हुई कि सम्भव है पाण्डव पुनः यहाँ आ जायें । इसलिये उन्होंने धृतराष्ट्र को बहुत बहकाया कि उन्हें यहाँ नहीं रहने देना चाहिए क्योंकि यदि वे यहाँ ही आकर रहेंगे तो सदा झगड़ा ही होता रहेगा और भय है कि वे आपको भी सिंहासन से उतार देंगे । परन्तु भीष्म, विदुर, द्रोणाचार्य आदि इस बात को मान नहीं रहे थे । किन्तु फिर भी धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य देने का निश्चय कर लिया । धृतराष्ट्र की आज्ञा से महात्मा विदुर पाण्डवों को लिवाने के लिए पांचाल देश गये । उनके साथ कुन्ती, द्रौपदी और पांचों पाण्डव हस्तिनापुर आ गये ।

हस्तिनापुर की प्रजा युधिष्ठिर से बहुत प्रेम करती थी । वह उसे चाहती थी इसलिए युधिष्ठिर आदि के हस्तिनापुर में आने का समाचार जानकर बहुत प्रसन्न हुई । धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य देकर खाण्डवप्रस्थ में रहने को कहा । युधिष्ठिर गुरुजनों को प्रणाम कर माता कुन्ती, द्रौपदी और भाइयों को साथ लेकर खाण्डवप्रस्थ चले गये । श्रीकृष्ण को भी उन्होंने वही बुला लिया । युधिष्ठिर ने खाण्डवप्रस्थ को सब प्रकार से सुसज्जित और सभी सुख-सुविधाओं से सम्पन्न कर एक बड़ा नगर बना लिया और उसका नाम इन्द्रप्रस्थ रखा । पाण्डव वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ।

1. अर्जुन का विवाह

उस युग में अनेक विवाह करने की प्रथा थी । अर्जुन ने तीन विवाह किये थे । एक बार अर्जुन युधिष्ठिर की अनुमति से तीर्थयात्रा के लिए गये । तीर्थों पर घूमते घूमते अर्जुन अनेक ऋषि-मुनियों और विद्वानों से मिले । उनसे अर्जुन ने बहुत लाभ उठाया और शिक्षा प्राप्त की । इस तीर्थयात्रा के समय ही अर्जुन असम प्रदेश की ओर पहुँचे और वहाँ नागजाति की कन्या उलूपी से

विवाह कर लिया। वहाँ से घूमते-घूमते वे मणिपुर में पहुँचे और वहाँ की राजकन्या चित्रांगदा से अर्जुन ने विवाह कर लिया। उससे बभ्रुवाहन नामक बड़ा वीर बेटा पैदा हुआ।

मणिपुर में चित्रांगदा से विवाह करने के पश्चात् अर्जुन तीर्थयात्रा के प्रसंग से ही पश्चिम दिशा में प्रभास तीर्थ पर पहुँचे। उस समय वहाँ एक बड़ा भारी मेला भरा हुआ था। उस मेले में श्रीकृष्ण जी भी आये हुए थे। अर्जुन का आना सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए। वे उनके घनिष्ठ मित्र थे। दोनों मित्र साथ ही रहे। अर्जुन ने अपनी तीर्थयात्रा का सारा वृतान्त श्रीकृष्ण को सुनाया, जिसे सुन वे बहुत प्रसन्न हुए। श्रीकृष्ण उस मेले से अपनी राजधानी द्वारिका आ गये। अर्जुन भी उनके साथ ही द्वारका पहुँच गये। इसके पश्चात् रैवतक पर्वत पर एक मेला हुआ। वहाँ श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन भी गये। मेले में श्रीकृष्ण जी की बहिन सुभद्रा अपनी सखियों के साथ खड़ी थी। वह अति सुन्दर थी। उसे देखकर अर्जुन का मन उस पर मोहित हो गया और उसने श्रीकृष्ण से उसके विषय में जानकारी लेनी चाही। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के मन का भाव समझ लिया और बोले—यह मेरी बहिन सुभद्रा है। यदि आप इससे विवाह करना चाहते हैं तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है। उन दिनों स्वयंवर विवाह होते थे और जात पात का विचार छोड़कर अन्तर्जातीय विवाह गुण-कर्मानुसार होते थे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि स्वयंवर में सुभद्रा आपको ही वरेगी, यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता।

श्रीकृष्ण की बात सुनकर अर्जुन कुछ दिन दुविधा में पड़े रहे और उन्होंने सुभद्रा से विवाह करने की अनुमति दूत भेजकर युधिष्ठिर से मंगवा ली। एक दिन अवसर पाकर वे सुभद्रा को रथ में बैठाकर ले भागे। इस घटना से यदुवंशियों को बड़ा क्रोध आया। चारों ओर विक्षोभ और अशांति की ज्वाला भड़क उठी। श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम ने तो उनसे युद्ध करने के लिए सेना भी तैयार कर ली। श्रीकृष्ण महान् नीतिज्ञ थे। उन्होने सबको समझा-बुझाकर शान्त किया और कहा कि अर्जुन के साथ सुभद्रा का विवाह हो जाने से हमारा बल बढ़ेगा। अर्जुन निम्न वंश के नहीं है। श्रीकृष्ण की बात सब ने मान ली। अर्जुन को वापिस बुलाया गया और सुभद्रा के साथ उसका विवाह विधिपूर्वक कर दिया गया। जिसके उत्पन्न होने से उसके वंश की

कीर्ति संसार में उज्ज्वल होती है उसका जन्म ही सफल होता है। अन्यथा इस परिवर्तनशील संसार में जन्म और मृत्य तो सबकी होती है। समय पाकर सुभद्रा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम अभिमन्यु रखा गया। वह बड़ा बहादुर था। अभिमन्यु के कारण उसके पिता अर्जुन का और पाण्डवों का नाम संसार में फैल गया और अभी तक वह कीर्ति अक्षुण्ण रूप से ज्यों की त्यों फैली हुई है।

2. राजसूय यज्ञ

एक दिन युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने की इच्छा श्रीकृष्ण पर प्रकट की। श्रीकृष्ण बोले—राजसूय यज्ञ तो अवश्य करना चाहिए, किन्तु यदि मगध देश के राजा जरासन्ध को नहीं जीता गया तो वह यज्ञ में अवश्य कुछ न कुछ विघ्न करेगा। इसलिए यज्ञ से पहले उसे अवश्य ही जीत लेना चाहिए। जरासन्ध इससे पहले भी कई बार कंस का बदला लेने के लिए श्रीकृष्ण पर आक्रमण कर चुका था। इसलिए श्रीकृष्ण उससे द्वेष भी रखते थे और उसे मारना भी चाहते थे। श्रीकृष्ण का प्रस्ताव युधिष्ठिर ने स्वीकार कर लिया ओर जरासन्ध का वध करने की योजना बना ली गई।

3. जरासन्ध का वध

मगध के राजा जरासन्ध का आतंक दिनों-दिन बढ़ता जा रहा था। अनेक छोटे बड़े 86 राजा उसकी क़ैद में बन्दी थे। अफवाह यह उड़ी हुई थी कि उसका इरादा बन्दी राजाओं की संख्या पूरी 100 तक पहुँचाने का है। उसके पश्चात् वह एक महायज्ञ का अनुष्ठान करके उस में 100 राजाओं की बलि देगा। जब श्रीकृष्ण और उनके साथियों की मिली-जुली सेनाएं भी निरन्तर युद्ध करने के बावजूद जरासंध को हराने के बजाय स्वयं उससे हार गई, तब उसका आतंक और भी अधिक फैल गया। अवस्था यहाँ तक पहुँच गई कि श्रीकृष्ण जरासन्ध से भयभीत हो गये और उन्होंने मथुरा को त्याग कर द्वारका को अपनी राजधानी बनाया।

4. जरासंध का जन्म

जरासन्ध के जन्म की कथा-पौराणिक है। फिर भी मनोरंजक है। इसलिए बालकों के मनोरंजन के लिए यहाँ दी जा रही है। मगध नरेश बृहद्रथ की कोई संतान नहीं थी। दुःखी हो वह अपनी दो रानियों सहित तप करने वन

में चले गये । वहँ चण्ड कौशिक मुनि से उनकी भेंट हुई । मुनि को राजा के निःसन्तान होने का समाचार मिला तो उन्हें राजा पर दया आई और एक फल देकर कहा कि यह रानी को खिला दो । उससे संतान उत्पन्न हो जायेगी । राजा ने वह फल मुनि से ग्रहण कर लिया । लेकिन उसने वह फल पूरा एक ही रानी को देने की बजाय दोनों को आधा-आधा खिला दिया । समय आने पर जब दोनों रानियों के सन्तान हुई तो दोनों के पुत्र आधे-आधे थे, जैसे एक बालक को बीच में से चीर दिया गया हो । आधे-आधे पुत्र उत्पन्न होने से रानियाँ ऐसी भयभीत हुई कि उन्होंने वे दोनो टुकड़े नगर के बाहर कूड़े कर्कट के ढेर पर फिकवा दिये ।

प्रभु माया बड़ी विचित्र है, उसका रहस्य बड़े-बड़े योगी और ऋषि मुनि भी नहीं पा सके हैं । आधे होने के बावजूद भी वे टुकड़े जीवित थे और उनमें से स्पन्दन बह रहा था । दैवयोग से जरा नामक एक राक्षसी मानव के मांस की तलाश करती हुई उधर आ निकली । उन दोनों टुकड़ों पर उसकी नजर पड़ी उन्हें उसने उठा लिया । उन्हें देख वह आश्चर्य में डूब गई और उसके रहस्य को समझने का प्रयत्न करने लगी । जैसे बालक किसी टूटे हुए खिलौने के टुकड़े को आपस में मिलाकर देखने लगते है । उसने भी उन दोनों टुकड़ों को आपस में मिलाकर देखा । उसके आश्चर्य और हर्ष का कोई ठिकाना न रहा जब वे दोनों टुकड़े मिलकर एक हो गये और वह पूरा बालक उस जरा राक्षसी के हाथों में खेलने लगा ।

चमत्कार से प्रभावित होने के कारण उसने उस शिशु का भक्षण करना उचित न समझा । वह सुन्दर युवती का रूप धारण कर बृहद्रथ के पास पहुँची और उसे शिशु देती हुई बोली अवश्य यह आपका ही पुत्र है । राजा ने वह शिशु रनवास में भिजवा दिया और राज्य में हर्ष की लहर दौड़ गई । उन दोनों टुकड़ों की सन्धि जरा ने की थी । इसी कारण इस शिशु का नाम जरासन्ध पड़ा । जरासन्ध के जन्म की कथा यद्यपि पौराणिक है और विश्वसनीय नहीं तथापि यह प्रचलित अवश्य है । यह भी लोकोक्ति है कि जरासन्ध में यह विशेषता थी कि आपतकाल में उसका शरीर बीच में से फटकर दो हो सकते थे । जब जब वे फटकर दो होते, तब तब ही फिर जुड़कर एक हो जाते थे । फिर भी वे टुकड़े मरते नहीं थे । इस जरासन्ध ने धर्मात्मा महाराज युधिष्ठिर

के लिए एक विकट समस्या खड़ी कर रखी थी ।

युधिष्ठिर एक धर्मप्रायण न्यायप्रिय राजा थे । 23 वर्षों के सुशासन के बाद उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि राजसूय यज्ञ करके सम्राट् पद प्राप्त किया जाये । दुर्योधन और कर्ण युधिष्ठिर को सम्राट् स्वीकार करे या नहीं । यह तो बाद का प्रश्न था किन्तु मुख्य प्रश्न तो यही था कि जरासंध से कैसे निपटा जाये । जरासन्ध अधिक शक्तिशाली था । अतः यह विश्वास नहीं होता था कि वह युधिष्ठिर को अपना सम्राट् स्वीकार कर लेगा । निर्णय किया गया कि पाण्डव जरासन्ध पर चढ़ाई कर दें और उस पर विजय प्राप्त कर अपने मार्ग के कांटे को साफ कर दें । फिर प्रश्न उठा कि श्रीकृष्ण अपने मित्रों के सहयोग से लगातार तीन-तीन वर्षों तक युद्ध करके भी जिसका बाल भी बांका न कर सके, उस जरासन्ध के विरुद्ध पाण्डव कैसे युद्ध कर सकेंगे । श्रीकृष्ण ने सम्मति प्रकट की कि जब तक जरासन्ध जीवित है, राजसूय यज्ञ का सफल होना सम्भव नहीं । उसके साथ सीधी टक्कर भी उचित नहीं जान पड़ती । हमारा परमशक्तिशाली भीमसेन क्यों न जरासन्ध के साथ मल्लयुद्ध करें । मुझे विश्वास है कि विजय भीम की ही होगी । सेनाओं को लड़ाने की आवश्यकता नहीं, केवल भीम और जरासन्ध को लड़ाया जाये और भीम उसे दो टुकड़ों में चीर सकता है ।

श्रीकृष्ण का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया और ब्रह्मचारी ब्राह्मणों की वेशभूषा में सजकर श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम मगध देश की ओर चल पड़े । वहाँ जरासन्ध ने अपनी परम्परा के अनुसार इन अतिथियों का स्वागत किया । किन्तु इनके हाथों को देखते ही वह शीघ्र समझ गया कि ये कोई ब्राह्मण नहीं क्षत्रिय हैं, क्योंकि इनके हाथों में वह निशान है, जो केवल धनुष तीर की रगड़ से ही पड़ सकता है । जरासन्ध ने जब कठोरता के साथ पूछा कि क्या है तुम लोगों का सही-सही परिचय? उन तीनों ने भी अपनी वास्तविकता न छिपा कर सही परिचय देना ही उचित समझा ।

इसके बाद श्रीकृष्ण बोले–

हमारी इच्छा तुमसे मलयुद्ध करने की है । हम तीनों में से किसी एक का चुनाव कर लो और उस से लड़ो ।

इस अचानक प्रस्ताव पर जरासन्ध को आश्चर्य हुआ, किन्तु फिर भी बोला—

कृष्ण! तुम तो ग्वाले हो, तुमसे क्या लड़ूँ। अर्जुन मेरे सामने बच्चा दिखता है। इससे भी क्या लड़ूँ। हाँ भीम के साथ कुछ बराबर की टक्कर रह सकती है। जरासन्ध ने मल्लयुद्ध के लिए भीम को चुना और उससे युद्ध हुआ। 13 दिन और 13 रात तक दोनों में लगातार भयंकर युद्ध चलता रहा। लगता था, फैसला होगा ही नहीं, किन्तु चौदहवें दिन जरासन्ध का दम फूलने लगा। भीम ने उसे ऊपर उठा और जमीन पर ऐसे पटका, जैसे धोबी किसी वस्त्र को घूमाकर पटकता है। इसके बाद भीम ने जरासन्ध के दोनों पैरों को पकड़ कर पूरे शरीर के बीच में से चीर दिया। भीम ने जरासन्ध के शरीर का दाँया टुकड़ा दाईं ओर और बाँया टुकड़ा बाईं ओर फेंक दिया। जरासन्ध को मरा जानकर भीम ने हर्ष के मारे भीषण गर्जना की।

मगर यह क्या हुआ। दोनों टुकड़े उड़कर झट से जुड़ गये और बलशाली जरासन्ध भयंकर चीत्कार करता हुआ भीम पर दुगुने क्रोध से टूट पड़ा। भीम हैरान रह गया कि इस विचित्र शत्रु को किस प्रकार मारा जाये। उसकी समझ में नहीं आया और उसे अपनी मृत्यु निकट ही दिखाई देने लगी। ऐसे संकट काल में श्रीकृष्ण को एक उपाय सूझा और उन्होंने युद्धरत भीम को इशारा करने के लिए घास का एक तिनका उठा लिया और इसे उन्होंने बीच में चीरा, फिर दायें टुकड़े को बाईं ओर और बायें टुकड़े को दाईं और फेंक दिया। श्रीकृष्ण का संकेत समझने में भीम को देर न लगी और वह उत्साह से दुगुना बढ़ गया। अवसर पाते ही उसने जरासन्ध के शरीर को पहले की तरह बीच में से चीर दिया। इस बार उसने दाया टुकड़ा बाईं ओर और बांया टुकड़ा दाईं ओर फेंका। दोनों टुकड़े मिल न सके और जरासन्ध की मृत्यु हो गई। श्रीकृष्ण को जरासन्ध की मृत्यु से बहुत खुशी हुई और उन्होंने भीम को गले से लगा लिया। श्रीकृष्ण ने जरासन्ध की कैद से बंद सभी 86 राजाओं को आज़ाद कर दिया। सारे राज्य में हर्ष की लहर दौड़ गई और प्रजा में श्रीकृष्ण की भारी जय जयकार हुई। जरासन्ध को मारकर, उसके क़ैदी 86 राजाओं

को जेल से छोड़ दिया और जरासन्ध के पुत्र सहदेव को मगध का राज्य सौंप कर श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ वापिस आ गये। इनके आने पर सारे राज्य में हर्ष छा गया और उनका भारी समारोह के साथ स्वागत किया गया।

3. पांडवों की दिग्विजय

एक दिन अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं दिग्विजय के लिए जाऊँ और पृथ्वी के सभी राजाओं से आपके लिए कर वसूल करूँ। युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—अवश्य, तुम्हारी विजय निश्चित है, युधिष्ठिर से आज्ञा प्राप्त करके चारों भाइयों ने दिग्विजय के लिए यात्रा की। अर्जुन उत्तर दिशा की ओर गये और उन्होंने चीन, तिब्बत, बलख, तुर्कीस्तान आदि देशों के राजाओं को पराजित करके उनसे कर वसूल किया और राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण दिया। उत्तर दिशा पर विजय करके अर्जुन बड़ी प्रसन्न्ता से इन्द्रप्रस्थ लौट आये और सारा धन, सारे रथ, घोड़े आदि धर्मराज को सौंप दिये। भीमसेन भी अर्जुन के साथ युधिष्ठिर की आज्ञा से पूर्व दिशा की ओर चल पड़े थे। भीमसेन ने समस्त पूर्व दिशा पर अपना अधिकार जमा लिया। शिशुपाल आदि कई राजा तो बिना युद्ध के ही उनकी अधीनता मान गये और उन्होंने युधिष्ठिर को कर देना स्वीकार कर लिया। पूर्व दिशा पर विजय प्राप्त करके भीमसेन सब धन लेकर इन्द्रप्रस्थ लौट आये और उन्होंने बड़ी श्रद्धा से सारा धन युधिष्ठिर को सौंप दिया। इसी प्रकार नकुल और सहदेव भी पश्चिम और दक्षिण दिशा की ओर चले गये। चारों भाइयों के दिग्विजय करके लौट आने पर पाण्डवों की कीर्ति-पताका दूर-दूर तक फहराने लगी और महाराजा युधिष्ठिर के कोष में अपार धनराशि जमा हो गई।

4. राजसूय यज्ञ की सफलता

जरासन्ध की मृत्यु के बाद जब पाण्डवों ने दिग्विजय भी कर ली तब युधिष्ठिर के राजसूय की सफलता में कोई सन्देह न रहा। उन्होंने देखा कि मेरे अन्न, वस्त्र, राज्य आदि के भण्डार सर्वथा पूर्ण है। तब उन्होंने यज्ञ करने का संकल्प किया। मित्रों ने भी उनसे आग्रह किया कि यज्ञ करने का यही समय

ठीक है। श्रीकृष्ण भी द्वारका से आ गये और यज्ञ करने के लिए कहने लगे। महाराज युधिष्ठिर चक्रवर्ती सम्राट् थे। उस समय सबका सार्वभौम राज्य था। पृथ्वी के सब राजा उनके अधीन थे। सब राजाओं को निमंत्रण पत्र भेजे गये। नकुल हस्तिनापुर गये और वहाँ उन्होंने भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, कृपाचार्य, विदुर, दुर्योधन आदि को निमन्त्रण दिया। युधिष्ठिर ने शकुनि, कर्ण, शल्य, जयद्रथ, धृष्टद्युमन, विराट, शिशुपाल, द्रुपद आदि राजाओं को सम्मानपूर्वक बुलाया। धर्मराज की आज्ञा से भगदत्त, मणिपुर का बभ्रुवाहन और योरुप का विडालाक्ष आदि भी यज्ञ में सम्मिलित हुए। सभी बहुमूल्य भेंट ले ले कर आये थे। सबको पृथक्-पृथक् स्थानों पर सत्कारपूर्वक ठहराया गया।

राजसूय यज्ञ को निर्विघ्न सम्पन्न करने तथा सुनियोजित विधि से सम्पूर्ण करने की दृष्टि से युधिष्ठिर ने सबको एक-एक कार्य सौंप दिया। दुःशासन भोजन के प्रबन्ध करने में, अश्वत्थामा ब्राह्मणों की सेवा में और संजय राजाओं के सत्कार में नियुक्त किये गये। भीष्म और द्रोण सभी कार्यों का परीक्षण करने लगे। कृपाचार्य दक्षिणा देने के लिये नियुक्त हुए। महात्मा विदुर व्यय करने के काम पर और दुर्योधन भेंट में आये पदार्थों के रखने में नियुक्त कर दिये गये। श्रीकृष्ण ने सबके पैर धोने के कार्य का उत्तरदायित्व स्वयं पर लिया।

दुर्योधन और कर्ण ने भी युधिष्ठिर को सम्राट् स्वीकार कर लिया। छोटे बड़े सैंकड़ों राजा राजसूय यज्ञ में सम्मिलित हो गये। चेदि का राजा शिशुपाल भी आया था। वह श्रीकृष्ण की बुआ का पुत्र था। फिर भी वह लड़ता और गालियाँ देता रहता था। श्रीकृष्ण उससे बहुत नाराज थे और उन्होंने अपनी बुआ को कह दिया था कि मैं शिशुपाल के 100 अपराध क्षमा कर दूँगा, किन्तु जब अगला अपराध करेगा तभी मैं इसे मार डालूंगा। यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया सभी अतिथियों को मुंह मांगी वस्तुएं देकर सत्कार किया गया। इस यज्ञ से सभी की तृप्ति हो गई।

5. शिशुपाल वध

जब यज्ञ समाप्त हो चुका, तब महात्मा भीष्म पितामह ने महाराजा

युधिष्ठिर को सलाह दी कि – यज्ञ समाप्त हो चुका है और सब कार्य भी विधिपूर्वक ठीक ढंग से सम्पन्न हा गये हैं, इसलिए अब आप यज्ञ में आए हुए सब राजाओं को यथायोग्य सत्कार कीजिए। क्योंकि ये हमारे अतिथि हैं। अतिथि के सत्कार को शास्त्रों में धर्म बतलाया गया है। इसलिए सबकी अलग-अलग पूजा करो और जो सर्वश्रेष्ठ है उसकी पूजा सबसे पहले करनी चाहिए। युधिष्ठिर ने पितामह से पूछा–पितामह कृपया करके आप बतलाइये कि सबसे श्रेष्ठ कौन है और किसकी सबसे पहले पूजा की जाये? भीष्म ने श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए कहा कि पृथ्वी पर श्रीकृष्ण ही सबसे बढ़कर पूजा के पात्र हैं। भीष्म की आज्ञा मिलते ही सहदेव ने विधिपूर्वक श्रीकृष्ण की पूजा की और उन्होंने उसे स्वीकार किया। चारों ओर आनन्द मनाया जाने लगा और सब दिशाओं में हर्ष की लहर दौड़ गई।

किन्तु शिशुपाल को यह बहुत बुरा लगा। वह बहुत बिगड़ा और इसका बहुत विरोध किया। वह श्रीकृष्ण जी का विरोधी था। इसलिये उनकी सर्वप्रथम पूजा से उसने समझा कि मेरा अपमान हो रहा है। यह विचार कर वह भीष्म पितामह, युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण आदि सभी गुरुजनों को गालियाँ देने लगा। भीष्म और युधिष्ठिर ने उसे बहुत समझाया किन्तु वह नहीं माना। जिस प्रकार अग्नि का स्वभाव जलना है और जल का स्वभाव शान्त करना है, उसी प्रकार दुष्ट का स्वभाव भी दुष्टता करना ही है। सैंकड़ों उपदेश करने से भी दुष्टों का स्वभाव नहीं बदला करता। परिणामस्वरूप श्रीकृष्ण और शिशुपाल के मध्य घमासान युद्ध छिड़ गया।

श्रीकृष्ण ने अपनी बुआ से यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं शिशुपाल के बड़े से बड़े 100 अपराध क्षमा कर दूँगा। वह 100 अपराध कर चुका था। किन्तु गर्व के नशे में चूर होने के कारण उसे अपने अपराध याद नहीं थे। मृत्यु उसके सिर पर नाच रही थी। बहुत समझाने पर भी जब वह नहीं माना तो श्रीकृष्ण अपने स्थान से उठे और बोले–

शिशुपाल सावधान ! अब बहुत हो चुका । मैंने बुआ को वचन दिया था कि मैं तुम्हारे 100 अपराध क्षमा कर दूँगा । लेकिन आज तुम यह आँकड़ा पार कर चुके हो । तुम्हारे पापों का घड़ा भर चुका है । अब तुम्हें दण्ड देना आवश्यक है ।

श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से उसका सिर क्षण भर में ही धड़ से अलग कर दिया । हमारी प्राचीन परम्परा यही रही है कि हम पृथ्वी के लोभ में किसी के साथ युद्ध नहीं करते थे । युद्ध अधर्म के साथ होता था । श्रीराम ने रावण को मारकर लंका को जीता, तो लंका का राज्य स्वयं न लेकर रावण के छोटे भाई विभीषण को दे दिया । इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने शिशुपाल को मारकर चेदि देश का राज्य स्वयं न संभालकर उसके पुत्र को वहां के सिंहासन पर बैठा दिया । यज्ञ समाप्त हो गया और सब आये हुए राजा महाराजा युधिष्ठिर से विदा मांगकर, प्रसन्नचित हो अपने-अपने देश को वापस लौट गये ।

अध्याय 5

युधिष्ठिर का सभाभवन

लाक्षागृह से बचकर जीवित निकल जाने पर जब पाण्डवों ने खाण्डव को जलाया उस समय अर्जुन ने श्रीकृष्ण की सलाह से वहाँ के मय नाम राक्षस को बचा लिया था। वह प्रसिद्ध शिल्पकार था। अर्जुन और श्रीकृष्ण उसे महाराज के पास ले गये। उसके गुणों से प्रभावित होकर युधिष्ठिर ने उसका आदर सत्कार किया। मय ने अर्जुन के उपकार का ऋण चुकाना चाहा और युधिष्ठिर के सामने यह इच्छा प्रकट की कि मैं उनके लिए एक सभाभवन बनाना चाहता हूँ। युधिष्ठिर ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और भवन बनाने की सारी सामग्री मंगवाकर एकत्र कर ली गई। मय ने बड़ी निपुणता के साथ ऐसा सभाभवन तैयार कर दिया जो सम्पूर्ण बहुमूल्य मणियों और रत्नों से सुशोभित तथा दिव्य स्फटिक से शोभायमान था। उस समय ऐसा सभा भवन सारे संसार में और कहीं नहीं था।

सभाभवन बन जाने पर महाराज युधिष्ठिर ने विधिपूर्वक उसमें प्रवेश किया और वहीं भवन उनका मुख्य सभा-भवन बन गया। राजसूय यज्ञ इसी सभा भवन में किया गया था। यज्ञ समाप्त होने पर सब राजा तो चले गये किन्तु दुर्योधन उस भवन को देखने के लिए वहीं ठहर गया। वहाँ की शिल्पकला को वह स्वयं ही देखने लगा। सभा भवन का फर्श बहुत विचित्र रीति से बना था। जहाँ देखने से स्थल जान पड़ता था। वहाँ पर जल था और जहाँ जल प्रतीत होता था, वहाँ स्थल था। रंग बिरंगे पत्थरों से यह ऐसा ही अद्‌भुत बनाया गया था। दुर्योधन एक जगह जल को स्थल जानकर निर्भय होकर चला। वह धम से पानी में गिर पड़ा और उसके कपड़े भीग गये। सब लोग हँसने लगे। उसे नये वस्त्र पहनने को दिये गये। वह एक जगह दीवार में द्वार समझकर अन्दर घुसने लगा तो दीवार से टक्कर खाकर गिर पड़ा। दुर्योधन की बातें देखकर भीमसेन आदि हँसने लगे। यह बात दुर्योधन के दिल में चुभ गई। उसे क्रोध तो बहुत आया। किन्तु मन को नियंत्रण कर रह गया। अब भीम ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला, मैं आपको सभाभवन

दिखला देता हूँ। उसने सोचा यह मेरी हँसी कर रहा है। इसलिए हाथ छुड़ाकर फिर स्वयं ही देखने लगा। एक जगह संगमरमर के एक खुले हुए द्वार को बंद समझकर वह हाथ से द्वार खोलने लगा। परन्तु वहाँ द्वार ही नहीं था। दुर्योधन उस दिन बहुत अधिक लज्जित हुआ। दो चार दिन और ठहर कर वह हस्तिनापुर चला गया।

1. कौरवों के सर्वनाश का कारण जुआ

दुर्योधन जिस दिन इन्द्रप्रस्थ से हस्तिनापुर पहुँचा उसी दिन से दुर्बल होने लगा और चिन्ता में मगन रहने लगा। उसने अपने मामा शकुनि से अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट किये।

मामा शकुनि ने समझाया—व्यर्थ ही दुःखी हो रहे हो, तुम्हें कमी किस बात की है? कर्ण, भीष्म, द्रोणाचार्य जैसे वीर तुम्हारे साथ हैं। तुम जो चाहो पा सकते हो। यह सुन दुर्योधन ने पूछा कि क्या हम वीरों को लेकर पाण्डवों पर चढ़ाई कर दें? शकुनि बड़ा कुटिल था। उसने कहा—तुम पाण्डवों का ऐश्वर्य ही छीनना चाहते हो न? तभी तुम्हें शान्ति मिलेगी। पाण्डवों को युद्ध में विजय करना सरल काम नहीं। इसलिए उन्हें कपट से ही विजयी करना होगा। शकुनि फिर बोला—मुझे जुआ खेलने की विद्या अच्छी तरह याद है। आप युधिष्ठिर को जुआ खेलने का निमन्त्रण दें। जुआ खेलने का व्यसन तो उन्हें भी है। परन्तु वे इस विद्या में पूरी तरह निपुण नहीं है और धर्मपूर्वक खेलते हैं। मैं उन्हें अवश्य ही हरा दूँगा। दुर्योधन की समझ में शकुनि की बात आ गई और फिर उन दोनों ने धृतराष्ट्र से कहा कि आप युधिष्ठिर को जुआ खेलने का निमंत्रण देकर यहाँ बुला लें।

धृतराष्ट्र ने उन्हें बहुत समझाया कि पाण्डवों से शत्रुता करना अच्छा नहीं, वे भी तुम्हारे भाई ही हैं। वे तुम से अधिक बलवान् हैं। बलवान् के साथ शत्रुता करना मैं अच्छा नहीं समझता। इससे कुल का नाश हो जाता है। दुष्ट व्यक्ति हितकारी की बात नहीं माना करता। दुर्योधन ने धृतराष्ट्र की बात नहीं मानी। विवश हो धृतराष्ट्र ने महात्मा विदुर को भेजकर युधिष्ठिर को जुआ खेलने का निमंत्रण दिया। युधिष्ठिर ने विदुर से कहा कि जुआ खेलना

तो मुझे कल्याणकारी नहीं जान पड़ता। वह तो केवल बड़े बखेड़े की जड़ है। ऐसा कौन भला व्यक्ति होगा जो जुआ खेलना पसंद करेगा? विदुर जी बोले—मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि जुआ खेलना अनर्थों का मूल है। मैंने तो यह भी कह दिया था कि जुआ कौरवों के नाश का कारण होगा। किन्तु वे माने ही नहीं। मैंने इसे रोकने का बहुत प्रयत्न किया। किन्तु मुझे सफलता नहीं मिली। किसी निमन्त्रण को स्वीकार न करना क्षत्रियों का धर्म नहीं। इसलिए इच्छा न होते हुए भी विवश होकर युधिष्ठिर अपने सब भाइयों और द्रौपदी के साथ हस्तिनापुर चले गये।

जुआ खेलना आरम्भ हुआ। उस समय धृतराष्ट्र के साथ बहुत से राजा वहाँ आकर बैठ गये। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और विदुर जी भी बैठे थे। किन्तु उनके मन में बड़ा दुःख था। युधिष्ठिर ने शकुनि से आग्रह किया—जुआ सर्वनाश की जड़ है, इसे न खेलना ही अच्छा है, परन्तु इसको वहाँ मानता कौन? फिर युधिष्ठिर ने कहा कि जुए की बाजी लगाई ही न जाये। युधिष्ठिर जुए के व्यसनी तो थे ही, और एक आध बाजी लगाने में उन्हें कुछ भी अनुचित न लगा। युधिष्ठिर के लालच को शकुनि ने तुरन्त ताड़ लिया। वह बड़ी सफलता से युधिष्ठिर का उत्साह बढ़ाता रहा और लालच के नशे में उस धर्मात्मा युधिष्ठिर का विवेक भी रसातल में चला गया। जुए का नशा किस प्रकार चुटकियों में धर्मात्मा को भी शैतान बना देता है वह आज के आधुनिक समाज में भी पूर्णतः दिखाई देता है।

खेल के लिए बड़ा भव्य मण्डप बनाया गया था। उस दिन वहाँ तिल रखने को भी स्थान नहीं था। आरम्भ में ही दुर्योधन ने घोषणा की कि मेरी जगह शकुनि खेलेंगे और दाव पर जो लगेगा वह सब मेरा होगा। युधिष्ठिर और शकुनि जुआ खेलने लगे। शकुनि बड़ा धूर्त था। सबसे पहले युधिष्ठिर ने एक मणियों का हार दाव में रखा और दुर्योधन ने भी इतने मूल्य का दाव मुकाबले में लगाया। तब जुआरी शकुनि ने पासे फैंकते ही कहा मैं जीता और कुछ लगाओ। इसी प्रकार युधिष्ठिर ने 19 दाव लगाये और सारे के सारे शकुनि ने जीत लिये। 20वें अंतिम दाव में द्रौपदी को भी हार गये। इस बात

से दुर्योधन को परम हर्ष हुआ और वह खुशी के मारे उछलने लगा ।

2. द्रौपदी का भरी सभा में अपमान

दुर्योधन को जीत से बड़ा अभिमान हो गया और वह अब अपने सामने सबको नीचा समझने और अपमानित करने में भी नहीं लजाता था । उसने द्रौपदी को सभा भवन में बुलाने के लिए कई बार दूत भेजे, पर वह नहीं आई । अन्त में उसने अपने छोटे भाई दुःशासन को भेजा । दुःशासन भी बड़ा क्रूर था । वह क्रोध में आकर द्रौपदी के बाल पकड़कर उसे सभा में घसीट लाया । सभा में जितने भी धर्मात्मा गुरुजन बैठे थे, सब ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया । परन्तु दुष्ट दुःशासन को जरा भी लज्जा नहीं आई । दुर्योधन रोती हुई द्रौपदी से बोला—तुम्हें तुम्हारे पति युधिष्ठिर जुए में हार गये हैं । अब तुम हमारी दासी हो । हमारे पास आकर बैठो । यह सुनकर द्रौपदी चीत्कार करके रोने लगी ।

कर्ण कहने लगा पाण्डव और द्रौपदी जुए में जीते गए हैं । इन सब के वस्त्र उतार लेने चाहिए । कर्ण की बात सुन पाण्डवों ने तो अपने वस्त्र स्वयं ही उतार दिये, किन्तु द्रौपदी तो स्त्री थी, स्त्री लज्जा स्वाभाविक होती है । अतः वह कैसे वस्त्र उतार सकती थी । दुःशासन उसके वस्त्र स्वयं ही खींचने लगा । पाण्डव लोग, कौरवों द्वारा द्रौपदी का भरी सभा में अपमान करने से बहुत क्रुद्ध हुए । किन्तु जुए में हार चुकने के कारण चुप ही बैठे रहे और कुछ भी न बोले । क्योंकि द्रौपदी पर आज उनका कुछ भी अधिकार नहीं और द्रौपदी पाण्डवों को तथा वहाँ बैठे गुरुजनों को ताने मारने लगी कि पाप होता हुआ देखकर भी आप चुप क्यों बैठे हो? धृतराष्ट्र ने दुःशासन को बहुत भला-बुरा कहा और ऐसा करने पर बहुत धमकाया । सबके रोकने पर वह लज्जित होकर बैठ गया । प्रभु कृपा से द्रौपदी की लाज बच गई । धृतराष्ट्र ने द्रौपदी को बुलाकर कहा—

बेटी ! तू मेरी बहुओं में बड़ी है । कोई वर माँग ।

द्रौपदी ने तुरन्त कृपा चाही कि—

युधिष्ठिर को दास-भाव से मुक्त कर दिया जाये । जिससे उसका लड़का दासपुत्र न कहलाए ।

धृतराष्ट्र ने यह वर देकर कहा और वर मांग–

दूसरे वर में द्रौपदी ने चारों पाण्डवों को आजाद करवा लिया।

सभा में जो कानाफूसी हो रही थी अब वह प्रकट होने लगी और सबके मुँह से यही आवाज आने लगी कि द्रौपदी के इस अपमान के अवश्य दूरगामी परिणाम होंगे और अन्त में कौरवों के विनाश को कोई नहीं बचा सकेगा। आज सदा के लिए सिद्ध हो गया कि अनाचारी कौन है और धर्म किसकी ओर है।

3. भीम-प्रतिज्ञा

द्रौपदी का भरी सभा में अपमान देखकर भीम पीपल के सूखे पत्ते की तरह कांपने लगा। उसने अपनी गदा को कई बार उठाना चाहा, किन्तु धर्मात्मा युधिष्ठिर उसे रोकते ही रहे। अन्त में भीम अपने क्रोध को संभाल न सका और होंठ फड़फड़ाकर मुट्ठियाँ भींच कर उठ खड़ा हुआ और चिल्लाने लगा–

हे सभासदो! आप सब के सामने मैं यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि जिस भुजा से दुःशासन ने द्रौपदी का वस्त्र खींचा है, जब तक उसे मैं उखाड़ कर न फेंक दूँगा और पापी की छाती से खून न पी लूंगा, तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। जब दुर्योधन द्रौपदी को बाईं जांघ दिखाकर हँसने लगा तो भीम ने क्रोध में भरकर आवेशपूर्ण रूप में दूसरी प्रतिज्ञा की कि अरे दुष्ट मैं तेरी जंघा को अपनी गदा से अवश्य तोड़ डालूँगा।

अब तो सभा में भारी उत्पात मचने लगा। महात्मा विदुर के धमकाने पर गान्धारी के समझाने से धृतराष्ट्र ने घोषणा की– हे द्रौपदी! तुमको मैं आज्ञा देता हूँ कि अब तुम स्वतंत्र हो और तीसरा वर मांग लो। द्रौपदी बोली–प्रभु कृपा से पाण्डव सब प्रकार से समर्थ हैं। इसलिए मुझे तीसरा वर नहीं चाहिए। तब धृतराष्ट्र ने कहा कि अब तुम पाँचों पाण्डव यहाँ से जाओ और पहले की तरह ही इन्द्रप्रस्थ पर राज्य करो। युधिष्ठिर आदि सब गुरुओं को प्रणाम करके वहाँ से इन्द्रप्रस्थ के लिए चल पड़े।

4. पाण्डवों को बारह वर्ष का बनवास

जब पाण्डव इन्द्रप्रस्थ जा रहे थे, तब दुःशासन ने दुर्योधन के कान में कहा कि पाण्डव तो जा रहे हैं, अब अवसर पाकर ये हमें जीता न छोड़ेंगे। दुःशासन की बात सुनकर दुर्योधन धृतराष्ट्र से फिर बोला– आप एक बार फिर जुआ खेलने की आज्ञा दे दीजिए। इस बार जो हारे वह बारह वर्ष तक वन में रहे। भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि ने बहुत समझाया कि अब जुआ नहीं होना चाहिए। नंग से तो परमात्मा भी डरता है। धृतराष्ट्र भी दुर्योधन था इसलिए उसने फिर जुआ खेलने की आज्ञा दे दी। इन्द्रप्रस्थ में उन्होंने चैन के दो दिन भी नहीं बिताये होंगे कि शकुनि ने फिर से जुआ खेलने का निमंत्रण भेज दिया। निमन्त्रण भेजना शकुनि का काम था और उसे स्वीकार करना न करना युधिष्ठिर का काम। वह जुआ खेलने के लिए सभा भवन में गये। वे दुःखी थे, क्योंकि वह समझते थे कि परिणाम क्या होगा। फिर भी वह गये और जुए पर शकुनि के सामने बैठ गये। हस्तिनापुर के बड़े-बूढ़ों ने उन्हें बहुत समझाया–रोका, क्योंकि यह अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी मारने जैसा ही काम था। किन्तु युधिष्ठिर न माने जिस शकुनि ने जुए के बल पर उन्हें बर्बाद कर देने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी, उसी शकुनि के साथ जुए का वही खेल खेलकर युधिष्ठिर ने भाग्य की चुनौती को स्वीकार कर लिया। युधिष्ठिर का तर्क भी अपनी जगह सही ही था। उन्होंने कहा–

कर्मों का फल सबको भोगना पड़ता है। पूर्व जन्म में मेरे और मेरे भाइयों के, और हमारी अर्द्धांगिनी के भी कर्म ऐसे ही रहे होंगे कि दुर्दैव इस रूप में हमारा पीछा कर रहा है। जुए से अगर मैं बच भी गया तो दुर्दैव किसी और रूप में प्रकट होगा। मैं उससे बच नहीं सकूंगा। इसलिए जुए का खेल विनाशकारी होते हुए भी, उससे बचने की मेरे लिए कोई सार्थकता नहीं है।

शकुनि युधिष्ठिर से बोला–आइये, इस बार ऐसा जुआ खेलें कि जो हार जाये वह अपने भाइयों के साथ बारह वर्ष प्रकट और एक वर्ष छिपकर वन में रहे। यदि एक वर्ष में वह देख लिया जाये, तो उसे फिर बारह वर्ष वन में रहना होगा। युधिष्ठिर ने यह बात भी मान ली। जुआ खेलना आरम्भ हुआ

और शकुनि ने, फिर छल से युधिष्ठिर को हरा दिया। जुआ खेलने की शर्त इतनी कठिन थी कि पाण्डव अपने जीवन काल में कभी भी हस्तिनापुर या इन्द्रप्रस्थ लौट न सकें। सभा में उपस्थित जनों ने शर्म से दृष्टि झुका ली। किन्तु युधिष्ठिर की आलोचना करने वालों की भी कमी न थी। जिन्होंने सब कुछ जानते हुए भी जुआ खेल कर सांप के बिल में हाथ डाला था। युधिष्ठिर की हार से दुर्योधन इस बार भी बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें मृगचर्म देकर कहने लगा—इसे पहन कर तुम वन में जाओ। पाण्डव मृगचर्म धारण कर, सब सभासदों और गुरुजनों को प्रणाम करके वन की ओर चलने लगे, तो पुरवासी सड़कों पर उमड़ पड़े। अपने हृदय सम्राटों और साम्राज्ञी को मृगचर्म धारण कर पैदल जाते देख लोग, विलाप करने लगे। भाग्य बलिहारी पर लोग त्राहि-त्राहि पुकार रहे थे।

कौरवों के साथ-साथ भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर आदि बड़े-बूढ़ों को खुल्लम खुल्ला धिक्कारा जा रहा था, जिनकी न केवल उपस्थिति में, अपितु सहमति से धर्मात्मा पाण्डवों पर इतना अन्याय किया जा रहा था। भीम की चाल हाथी के समान थी, दुर्योधन उसकी नकल करके पीछे-पीछे चलने लगा। भीमसेन से यह सहन नहीं हुआ। उसने उसी समय प्रतिज्ञा की—दुर्योधन ! मैं रणभूमि में तेरे सिर पर लात मारूंगा, तेरी जंघा तोडूंगा। तेरे भाइयों को मारूंगा और दुःशासन की छाती का खून पीऊँगा। अर्जुन ने कर्ण को मारने की और सहदेव ने शकुनि को मारने की प्रतिज्ञा की। युधिष्ठिर और नकुल ने भी कौरवों के नाश की प्रतिज्ञा की। विदुर के कहने पर युधिष्ठिर ने माता कुन्ती को विदुर के घर पर ही छोड़ दिया और द्रौपदी को साथ लेकर पांचों भाई वन को चल पड़े। मृगचर्म धारण कर उनको जाते देखकर सब सज्जनों की आँखों में आँसुओं की धारा बह चली।

5. पाण्डवों का वनवास

पाण्डवों के वनवास का समाचार बिजली की भाँति देश-विदेश में फैल गया। दूर-दूर से राजा महाराजा और ऋषि मुनि वन में जाकर उनसे मिले

और हर प्रकार से उन्हें सांत्वना देने लगे। नीति और आपद्धर्म की शास्त्रीय और व्यावहारिक बड़ी-बड़ी चर्चाएं हुई। धर्मपरायण युधिष्ठिर ने देखा कि जिस धर्म की रक्षा के लिए उन्होंने राजपाट त्याग कर वनवास और अज्ञातवास की कठोर शर्तों को स्वीकार किया है उसी धर्म के विरुद्ध चलने की सलाह भी नीतिशास्त्र में दी गई है। भीमसेन और द्रौपदी ने ऐसे-ऐसे तर्क दिए जो पूर्णतः नीति के अनुकूल थे और जिनसे युधिष्ठिर स्पष्ट रूप से कायर व्यक्ति सिद्ध हो जाते थे। धर्मात्मा युधिष्ठिर की तिलमिलाहट सीमा को पार कर गई उन्होंने, जैसा भी उनसे बन पड़ा। भीमसेन और द्रौपदी के तर्कों का उत्तर दिया। कईं तर्कों का तो वे उत्तर भी न दे सके। पूर्णतः घिर जाने और निरस्त हो जाने पर भी युधिष्ठिर इस बात पर अटल रहे कि जुए की घातक शर्तों को अवश्य पूरा किया जायेगा। जब हस्तिनापुर की प्रजा को पाण्डवों के वन जाने का समाचार मिला तो उसके दुःख का पारावार न रहा। सब लोग शोक से व्याकुल होकर भीष्म, द्रोणाचार्य आदि की निन्दा करने लगे।

तत्पश्चात् वे पाण्डवों के पास जाकर बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर कहने लगे—पाण्डवों! आप लोग हमें हस्तिनापुर में दुःख भोगने के लिए छोड़कर कहाँ जा रहे हो? आप लोग जहाँ जायेंगे, हम भी वही चलेंगे। कहीं दुष्ट दुर्योधन के राज्य में हमारा सर्वनाश न हो जाये। प्रजा की बात सुनकर धर्मात्मा युधिष्ठिर बोले—वास्तव में हम लोगों में कोई गुण नहीं है, फिर भी आप लोग स्नेह के कारण हममें गुण देख रहे हैं, यह बड़े सौभाग्य की बात है। मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि आप हमारी बात स्वीकार करें। आप लोग बहुत दूर तक आ गये हैं। अब और आगे न चलें। इस प्रकार समझा बुझाकर युधिष्ठिर ने उन्हें लौट जाने को कहा। जिस समय उनसे लौटने के लिए कहा गया, उस समय हस्तिनापुर की प्रजा हाय! हाय! पुकार उठी। पाण्डवों के गुणों, स्वभाव आदि का स्मरण करते हुए, इच्छा न रहने पर भी, युधिष्ठिर के आग्रह से वह लौट गई। पाण्डवों के वनवास पर चले जाने के

बाद नारद मुनि वहाँ आये और धृतराष्ट्र से बोले–

राजन ! मैं आपको यह सूचित करने आया हूँ कि आपने पाण्डवों के साथ जो अन्याय किया है उसका आपको भारी दंड भुगतना पड़ेगा। 14 वर्ष बाद कुरुवंश पूरी तरह नष्ट हो जाएगा और पाण्डवों की विजय पताका फहरायेगी।

श्रीकृष्ण भी वन में पाण्डवों से मिलने गये। जब वे युधिष्ठिर से मिले तो द्रौपदी क्रन्दन करने लगी और श्रीकृष्ण से बोली–मैं उस समय एक ही वस्त्र में थी, जब दुष्ट दुःशासन मुझे बालों से पकड़कर घसीटता हुआ सभा में ले गया था। उस समय अत्याचारी ने जो मेरे साथ किया उसे अपने मुंह से कैसे बताऊँ। मेरी तो लाज बच ही गई, यदि न बचती तो अनर्थ हो जाता। उसकी तो कल्पना न करना ही अच्छा हैं मुझे लग रहा था कि विश्व में सबसे अधिक अभागिनी मैं ही हूँ। मेरा न पति है, न पुत्र, न बन्धु-बांधव। इतना कहना था कि द्रौपदी का गला रूंध गया और आँखों से आंसू उमड़ पड़े। श्रीकृष्ण विचलित हो गये और द्रौपदी से बोले–

बहिन, जब तक सभी कौरवों की लाशें युद्ध के मैदान में चील कौवों की क्षुधा शान्त न करेंगी तब तक मैं चैन से न बैठूँगा। चाहे समुद्र सूख जाये, हिमालय के टुकड़े-टुकड़े हो जायें, धरती फट जाये, आकाश गिर पड़े। किन्तु मेरा वचन अवश्य सत्य होगा। यदि मैं द्वारका में रहता और जुए का समाचार समय रहते मुझे मिल जाता, तो धृतराष्ट्र का निमंत्रण न होने पर भी मैं सभा में आ जाता और किसी न किसी प्रकार इस अनर्थकारी खेल को रुकवा देता। जो हुआ सो हुआ, अब तो आगे की सुध लेनी चाहिए।

अनेक ऋषि मुनि पाण्डवों से मिलने के बाद सीधे जाकर कौरवों से मिलते और दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि को समझाते कि धर्मात्मा पाण्डवों के साथ अन्याय जारी मत रखो। पाण्डवों से सन्धि करके उनका राजपाट लौटा दो अन्यथा महान् अनर्थ होगा। दुर्योधन आदि के कान पर जूं भी न रेंगी। पाण्डव चलते-चलते काम्यक वन में पहुँच गये और कन्दमूल फल खाते हुए रात और दिन बिताने लगे। महर्षि वेदव्यास भी पाण्डवों से मिलने के लिए

आये। युधिष्ठिर ने उसके सामने यह चिन्ता व्यक्त की कि कौरवों के पक्ष में एक से एक बढ़कर अनेक योद्धा हैं। यह सुन मुनि ने उन्हें यह सलाह दी कि अर्जुन यदि हिमालय पर जाकर तपस्या करे और दिव्यास्त्रों की शिक्षा प्राप्त कर ले तो तुम्हारा पक्ष निर्बल नहीं, अपितु कौरवों से कुछ सशक्त हो जायेगा। हिमालय पर बड़े-बड़े धनुर्धर और युद्ध विद्या के पूर्ण ज्ञाता विज्ञाता निवास करते हैं। अर्जुन ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर उनसे युद्ध विद्या के सब गुण सीख ले और अस्त्र-शस्त्र चलाने का उत्तम ज्ञान प्राप्त कर ले। युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन ने हिमालय पर बड़े परिश्रमपूर्वक दिव्यास्त्रों की शिक्षा प्राप्त कर ली और युधिष्ठिर अपनी शक्ति के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो गये।

6. विदुरजी द्वारा धर्मोपदेश

जब पाण्डव वन में चले गये, तब धृतराष्ट्र के मन में बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई। उन्होंने धर्मात्मा विदुर जी को बुलाकर उनके समक्ष अपनी चिन्ता इस प्रकार व्यक्त की—भाई विदुर! तुम राजनीति और धर्म को ठीक-ठीक समझते हो। इसलिए अब कोई ऐसा उपाय बताओ कि जिससे कौरव-पाण्डव दोनों का हित हो और पाण्डव भी क्रोधित होकर हमारी कोई हानि न कर सकें। विदुर जी ने समझाया—राजन्! राज्य की जड़ धर्म है। आप धर्मपूर्वक पाण्डवों की और अपने पुत्रों की रक्षा कीजिए। आपके पुत्रों ने शकुनि की उत्साह से भरी सभा में पाण्डवों का तिरस्कार किया है। युधिष्ठिर को कपट में हराकर राज्य छीन लिया है। इस पाप को दूर करने का एक ही उपाय है कि आपने पाण्डवों का जो कुछ छीन लिया है, वह सब उन्हें वापिस लौटा दिया जाये। यह काम आपके लिए अति श्रेयस्कर है कि आप पाण्डवों को सन्तुष्ट करें और शकुनि का अपमान करें। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो सारे कुरुवंश का नाश हो जायेगा।

यदि दुर्योधन पाण्डवों के साथ रहना स्वीकार कर ले तब तो ठीक है, नहीं तो प्रजा के सुख के लिए उसे कैद करके युधिष्ठिर को राजसिंहासन पर बैठा दीजिए। विदुर जी द्वारा धर्म का उपदेश सुनकर धृतराष्ट्र क्रुद्ध हो गया और बोला—विदुर! तुम यह क्या कह रहे हो? तुम तो पाण्डवों का हित चाहते हो और मेरे पुत्रों का अहित। मेरे मन में तुम्हारी बातें नहीं बैठती। तुम

बार-बार पाण्डवों के पक्ष की ही बातें कहते हों। मुझे तुम्हारी अब कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी इच्छा हो तो यहाँ रहो, अन्यथा जहाँ चाहो चले जाओ। धृतराष्ट्र का क्रोध देखकर विदुर के मुँह से निकल पड़ा कि अब कुरुवंश का नाश अवश्यम्भावी है। इतना कहकर वह राजधानी छोड़ कर पाण्डवों के पास काम्यक वन में चले गये।

किन्तु धृतराष्ट्र को अपनी इस भूल पर महान् पश्चाताप हुआ और पश्चाताप की अग्नि में दहकने लगा। फिर उसने संजय से कहा—हे संजय! मेरा प्रिय भाई विदुर मेरा हितैषी और धर्म की साक्षात् मूर्ति है। मैंने क्रोध के वशीभूत हो अपने निरपराध भाई को निकालकर बड़ी भूल की है। तुम शीघ्र ही जाकर उसे वापिस ले आओ। धृतराष्ट्र का आदेश पा संजय काम्यक वन में जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने विदुर को प्रणाम कर धृतराष्ट्र का समाचार निवेदन किया और हस्तिनापुर वापिस चलने के लिए उनसे प्रार्थना की। विदुर ने पाण्डवों से अनुमति ली और संजय के साथ हस्तिनापुर लौट आये। विदुर से मित्रता कर धृतराष्ट्र को बड़ी प्रसन्नता हुई।

हस्तिनापुर से प्रस्थान करने के बाद पाण्डव निरन्तर 3 दिन तक चलते ही रहे। जिस मार्ग से ये काम्यक वन में प्रवेश करना चाहते थे। आधी रात के समय किर्मीर नामक राक्षस उसी मार्ग को रोककर खड़ा हो गया। वह बहुत बलवान व भयंकर था। पाण्डवों का परिचय जानकर उन्हें अपना परिचय देते हुए उसने कहा मैं बकासुर का भाई और हिडम्ब का मित्र हूँ। उसको इसी भीमसेन ने मारा है। मैं अब तक इसी की खोज में था। आज अच्छा अवसर मिला है मुझे इस पर क्रोध आ रहा है, मैं इसे मार दूँगा। भीमसेन ने उसकी बात सुनी और उसी समय एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़कर उसके सिर पर दे मारा। किर्मीर को इससे कुछ भी घबराहट नहीं हुई। इसके बाद दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा। भीमसेन ने उसको जमीन पर गिरा दिया और उसकी कमर घुटनों से दबाकर उसका गला घोंट दिया। उसकी आँखें बाहर आ गई और वह मर गया।

8. काम्यक वन में श्रीकृष्ण आदि का सम्मेलन

पाण्डवों के वन में चले जाने का समाचार शीघ्र ही सर्वत्र फैल गया दूर-दूर से युधिष्ठिर के मित्र राजा उनसे मिलने के लिए काम्यक वन में आ

गये । सब राजा-महाराजा युधिष्ठिर को प्रणाम करके श्रीकृष्ण को अपना नेता बनाकर युधिष्ठिर के चारों ओर बैठ गये । उसके बाद श्रीकृष्ण ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा– हे पृथ्वीपालो ! अब यह बात निश्चित् हो गई है कि पृथ्वी दुष्ट दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन का खून पीयेगी । जो मनुष्य किसी को धोखा देकर स्वयं सुख भोग रहा हो, उसे मार डालने में कोई पाप नहीं है । इसलिए अब हम लोगों का कर्त्तव्य है कि सब इकट्ठे होकर कौरवों और उनके मित्रों को युद्ध में मार डालें और महात्मा युधिष्ठिर को सिंहासन पर बैठा दें । श्रीकृष्ण की ये बातें सुनकर अर्जुन बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने उनकी प्रशंसा की ।

इसके बाद द्रौपदी श्रीकृष्ण के पास आकर अपनी कथा सुनाने लगी–हे श्रीकृष्ण कौरवों की भरी सभा में मुझे घसीटा गया । यह कितने दुःख और अपमान की बात है । भीम और अर्जुन भी मेरी रक्षा नहीं कर सके । धिक्कार है इनके पौरुष को ! दुर्योधन ने कई बार पाण्डवों और भीमसेन के नाश करने के षडयंत्र रचे । मुझ सती की चोटी पकड़कर दुःशासन ने भरी सभा में घसीटा और ये पाण्डव देखते ही रहे । ये बातें कहते-कहते द्रौपदी की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली । वह मुँह ढककर रोने लगी । इसके बाद द्रौपदी ने श्रीकृष्ण से अपनी सहायता की प्रार्थना की । श्रीकृष्ण ने द्रौपदी को सहायता का वचन दिया और धैर्य रखने का परामर्श दिया ।

फिर श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से कहने लगे कि– यदि उस समय मैं द्वारका में होता तो आप को इतना दुःख नहीं उठाना पड़ता । मैं जुए के अनेक दोष सम्मुख रखकर जुए के इस महान् अनर्थ को रोक देता और यदि वे मेरी हितकारिणी सलाह नहीं मानते तो मैं बलपूर्वक उन्हें दण्ड देता । उस समय मेरे द्वारका में न रहने से ही आपने जुआ खेलकर घर बैठे विपत्ति बुला ली है । आप कहाँ गये थे–जब युधिष्ठिर ने पूछा तो उन्होंने बताया कि आपके राजसूय यज्ञ में जब मैंने अपने सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का वध कर डाला था तो यह समाचार सुनकर उसके मित्र शाल्व ने द्वारका पर चढ़ाई कर दी थी । मैं उसे मारने के लिए समुद्र के एक भयानक द्वीप में चला गया था । जब मैंने आपके जुए में हारने का समाचार सुना, तभी मैं वहाँ से चल पड़ा और अब हस्तिनापुर होता हुआ यहाँ आया हूँ ।

9. पाण्डव द्वैतवन में

सब के लौट जाने के बाद धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से सलाह ली कि हमें बारह वर्ष तक निर्जन वन में रहना है, इसलिए जहाँ फल-फूल अधिक हों, जहाँ का स्थान मनोहर और सुखदायक हो, जहाँ ऋषियों के पवित्र आश्रम हों—ऐसा स्थान ढूंढ कर वहीं रहना चाहिए। यह सुनकर अर्जुन ने कहा—इससे आगे जो वन पड़ेगा। उसका नाम द्वैतवन है। वह सब प्रकार से सुन्दर व सुखद है। यदि आपकी अनुमति हो तो हम वहीं चलें। सर्वसम्मति से निश्चय हो जाने पर पाण्डव वहाँ चले गये और वहीं रहने लगे। एक दिन महामुनि मार्कण्डेय पाण्डवों के आश्रम पर आये। युधिष्ठिर ने उनका यथायोग्य स्वागत किया। फिर मुनि ने युधिष्ठिर को उपदेश दिया—

मनुष्य को, 'मैं बड़ा बलवान हूँ'' ऐसा समझकर कभी भी अधर्म नहीं करना चाहिए। भारतवर्ष में बड़े-बड़े प्रसिद्ध राजाओं ने सत्य के बल पर ही पृथ्वी पर शासन किया था।

इस प्रकार कहकर महामुनि मार्कण्डेय पाण्डवों से अनुमति लेकर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान कर गये। एक दिन उनके आश्रम में बृहदश्व ऋषि पधारे। युधिष्ठिर आदि को दुःखी देख उन्होंने राजा नल और दमयन्ती की कथा भी सुनाई और कहा—धर्मराज क्या राजा नल ने तुम से अधिक दुःख नहीं झेले? अपने भाई पुष्कर के साथ उसने भी जुआ खेला और सारा राजपाट गंवा दिया था। जब वह वनवास के लिए चला तो उसके साथ कोई भाई नहीं था। न वारुण ही उसके साथ गये। तुम्हारे तो भाई बन्धु साथ हैं, प्रसिद्ध ऋषि मुनि तुमसे मिलने आते हैं। उनमें से कई तो तुम्हारे साथ ही रहने लगे हैं। कलि ने राजा नल की बुद्धि हर ली थी, जब कि तुम्हारी मेधा पर कभी आँच नहीं आई। निर्बुद्धि नल अपनी अर्द्धांगिनी को वन में अकेली छोड़कर भाग गया था। जबकि पांचाली जैसी सती साध्वी निरंतर तुम्हारे साथ बनी हुई हैं फिर भी यदि तुम सोचो कि विश्व के सबसे बड़े दुःख तुम पर ही आकर गिरे हैं तो यह सर्वथा अनुचित है। अपने दुःखों का सही मूल्यांकन करने का उपाय यही है कि अपने से भी अधिक दुःखी व्यक्तियों की तुलना में रखकर सोचें। इस संसार में अधिक से अधिक दुःखी व्यक्ति से भी अधिक दुःखी कोई न

कोई अवश्य होता है । इस प्रकार ऋषि बृहदश्व के उपदेश और राजा नल की कथा से धर्मराज युधिष्ठिर का सन्ताप कुछ कम हो गया ।

10. द्रौपदी का आक्रोश

एक दिन सायंकाल पाण्डव कुछ शोकमग्न से होकर द्रौपदी के साथ बैठे परस्पर वार्तालाप कर रहे थे । द्रौपदी कहने लगी – सचमुच दुर्योधन बड़ा ही झूठा एवं दुष्ट है । हम लोगों को दुःखी देखकर उसे जरा भी दुःख नहीं होता । उसने हम लोगों का मृगचर्म ओढ़ाकर घोर जंगल में भेज दिया और रत्ती भर भी पश्चाताप नहीं हुआ है । मैं आप लोगों के पहले दिन देखकर और ये दिन देखती हूँ तो रोना आता है । आप लोगों की क्या दशा हो रही और मेरी दशा भी आप देख रहे हैं । फिर आप को उस पर क्रोध क्यों नहीं आता ? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया –

व्यक्ति को क्रोध के वश में न आकर क्रोध को अपने वश में करना चाहिए । जिसने क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली, मानों उसका कल्याण हो गया । क्रोध के कारण मनुष्य का नाश हो जाता है ।

युधिष्ठिर की बात सुनकर द्रौपदी ने कहा कि महाराज ! क्या वन में रहना आपको अच्छा लगता है ? आपके चारों भाई आपकी आज्ञा की प्रतिक्षा में हैं, अन्यथा इनकी क्रोध की अग्नि में कौरव तृण के समान जल जाते । बलवान् और धर्मात्मा आपकी पत्नी, मैं धूल में सोती हूँ और पहाड़ी और वनों में पैदल घूमती फिरती हूँ । क्या आपको मेरी यह दशा देखकर भी क्रोध नहीं आता ? द्रौपदी का आक्रोश सुनकर धर्मात्मा युधिष्ठिर बोले –

मैं तो धर्म के बंधन में बंधा हुआ हूँ । प्राण रहते मैं सत्य नहीं छोड़ सकता । हम जो वचन जुए में हार चुके हैं उनको पूरा कर लेने के बाद तुम हमारे बल, विक्रम और क्रोध को देख लेना ।

अध्याय 6

कौरवों का पुनः द्वेष जागरण

पाण्डव तो द्वैतवन में पहुँच गए और इधर हस्तिनापुर में कर्ण और शकुनि दुर्योधन को मक्खन लगाने का कोई अवसर नहीं चूकते थे। राजसूय-यज्ञ करके युधिष्ठिर को जो सम्राट् पद प्राप्त था, पाण्डवों के वनवास के कारण वही सम्राट् पद अब दुर्योधन के पास आ गया। नीतिशास्त्र में कहा गया है कि गुणी लोगों के गुण बने रहते हैं। यही दशा दुर्योधन की हुई। सम्राट् पद पाकर उसे प्रसन्न और निश्चित् होना चाहिए था, किन्तु वह चिन्तित था और उसका चेहरा दिनोंदिन मलिन होने लगा। कर्ण और शकुनि ने जब इस पर चिन्ता व्यक्त की तो दुर्योधन बोला–

अंधकार देखकर ही प्रकाश का सुख मिलता है और दुःखों को देखकर सुख का अनुभव होता है। मैं अपने सुख का पूर्ण आनन्द तभी ले सकूंगा, जब शत्रुओं के दुःख को अपने नेत्रों से देख लूँ।

'इस में कठिनता क्या है? पाण्डव इन दिनों द्वैतवन में ठहरे हुए हैं। हम वहाँ चलते हैं– ''उनके दुःख को तुम अपने नेत्रों से न केवल देख ही सकोगे अपितु अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन भी उनके सामने कर सकोगे।'' शकुनि ने सलाह दी। दुर्योधन गहरी साँस लेकर बोला कि पिता की आज्ञा के बिना द्वैतवन हम कैसे जा सकेंगे? वे यह कभी नहीं चाहेंगे कि हम बिना किसी प्रयोजन के पाण्डवों के पास जायें। हम जिस कारण से जाना चाहते हैं वह पिता के सामने प्रकट नहीं किया जा सकता। कर्ण भी तो कम दुष्ट नहीं था। उसने प्रस्ताव रखा कि– ''द्वैतवन में ग्वालों की कुछ बस्तियाँ है। वहाँ की पशु गणना प्राचीनकाल में राजकुमार किया करते थे। क्या इस कार्य के बहाने हम वहाँ नहीं जा सकेंगे? महाराजा इस कार्य की आज्ञा तो सहर्ष दे देंगे।'' इस प्रस्ताव से दुर्योधन और शकुनि प्रसन्न थे।

महाराजा धृतराष्ट्र ने द्वैतवन जाने की आज्ञा दे दी और वह द्वैतवन की ओर प्रस्थान करने लगा। मात्र पशु-गणना के लिए जाने के बावजूद कौरवों ने अपने साथ सैंकड़ों नौकर और एक बड़ी भारी सेना भी रखी, क्योंकि इसके

बिना वे पाण्डवों के सम्मुख अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन कैसे करते। द्वैतवन में उन्होंने एक ऐसे स्थान पर अपना खेमा गाड़ा कि वहाँ से पाण्डवों का आश्रम बहुत दूर नहीं था। पशुओं का रंग, आयु, नस्ल, नाम आदि के आधार पर पशु गणना करके कौरव राजकुमारों ने उसे खालों में भरा। इसके बाद शिकार खेलने के बहाने दुर्योधन एवं उसके साथियों ने उसी दिशा में बढ़ना शुरू किया जिधर पाण्डवों का आश्रम था। आश्रम के निकट ही एक जलाश्य था। उस जलाश्य के किनारे दुर्योधन ने अपना डेरा डालने का आदेश दे दिया। संयोग की बात, जिस जलाशय के किनारे उसके नौकर खेमा गाड़ने गये, वहीं गन्धर्वराज चित्रसेन पहले से ही परिवार सहित डेरा डाले हुए थे। फिर भी दुर्योधन के कर्मचारियों ने वहाँ जबरन अपना डेरा लगाना आरम्भ कर दिया। गन्धर्वराज के सेनानी इस पर क्रुद्ध हो गये और दोनों दलों में युद्ध हो गया। दुर्योधन के कर्मचारियों को जान बचा कर भागना पड़ा।

धन से किसको घमंड नहीं हो जाता, दुर्योधन भी अपने ऐश्वर्य के नशे में चूर था, वह चिल्लाया-आक्रमण का आदेश दिया। आरम्भ में तो गंधर्वराज के सैनिकों के पैर उखड़ गये, किन्तु जब गंधर्वराज ने मायास्त्र चला दिया तो कौरवों की सेना भाग चली। कर्ण और शकुनि ने अपने सैनिकों को बहुत रोका परन्तु उन्हें सुनने की भी होश न थी। अकेला दुर्योधन गन्धर्वराज के सामने डटा रहा, किन्तु अकेला चना भाड़ कैसे फोड़ सकता था। गन्धर्वराज ने दुर्योधन को पकड़कर रस्सियों से इतने जोर से बांधा कि वह चिल्ला पड़ा। कौरवों की बची खुची सेना में खलबली मच गई।

उसे कुछ न सूझा तो वह पाण्डवों के आश्रम की ओर ही भागी। पाण्डवों के पैरों में गिर कर वे रक्षा की भीख मांगने लगे। इसमें भीम तो प्रसन्न हुआ और बोला अच्छा हुआ। किन्तु धर्मराज युधिष्ठिर भीम को रोकते हुए बोले—भीम! ऐसा न कहो, कौरव भी आखिरकार हमारे भाई ही हैं। उनका अपमान हमारा भी अपमान है। आपस में हम चाहे अलग-अलग हैं, किन्तु दूसरे के साथ विरोध होने पर हमें मिल जाना चाहिए। हमें जाकर दुर्योधन को अवश्य छुड़वाना चाहिए। जरा सोचो, अन्य किसी दृष्टि से नहीं, किन्तु इस दृष्टि से तो सोचकर देखो कि यदि हम उसे छुड़ायेंगे तो उसकी कितनी हेठी होगी। युधिष्ठिर की बात भीम के दिमाग़ में आ गई। वह मस्ती से उठा और

अर्जुन को साथ लेकर मैदान में पहुँच गया। दोनों ने कौरवों की भागती हुई सेना को एकत्र कर गन्धर्वों की ओर प्रस्थान कर दिया। गन्धर्वराज ने जब पांडवों को अपनी ओर आते देखा तब वह सब बात आसानी से समझ गया और बोला लीजिए, दुर्योधन को अभी मुक्त कर देता हूँ। सबक तो इसे मिल ही चुका है।

दुर्योधन को एक तो गन्धर्वराज की सेना से हारना पड़ा और दूसरे जिन पाण्डवों का अपमान करने के लिए वह द्वैतवन में आया था, उन्हीं पाण्डवों ने अपना भाई मानकार उसे गन्धर्वों के पास से छुटकारा दिलाया। इस दोहरी लज्जा के कारण वह निर्जीव सा हो गया और उसका चेहरा एक दम काला पड़ गया। अर्जुन और भीम की ओर देखने तक का उसका साहस न रहा। गन्धर्वों से छुटकारा मिलते ही वह अपनी सेना और नौकर के साथ हस्तिनापुर की ओर चला गया। मार्ग में दुर्योधन को कर्ण और शकुनि मिले। उनसे उसने बड़े दुःखी भाव से कहा कि यदि गन्धर्वराज मुझे जान से मार देता तो अच्छा रहता। उन दोनों ने उसे बहुत समझाया कि आप इतने दुःखी न हों, ये तो अचानक घटनाएं हैं और होती ही रहती हैं। किन्तु दुर्योधन का दुःख इतनी आसानी से टलने वाला नहीं था। वह हस्तिनापुर से द्वैतवन में अपना दुःख दूर करने के लिए आया था, किन्तु वापिस गया तो वह दुःख घटने के बजाय और दुगुना बढ़ गया था। शकुनि ने दुर्योधन को तरह-तरह से साहस बंधाते हुए कहा कि पांडवों के अनिष्ट के लिए तो एक नहीं अनेक उपाय सोचे जा सकते हैं। व्यर्थ ही अपना दिल छोटा न करो। ये मामूली घटनाएं तो होती ही रहती हैं। दुर्योधन ने कहा कि जब तक उनका कोई ठोस अनिष्ट नहीं हो जाता, तब तक मात्र बातों से मेरा मन नहीं बहलेगा।

कुछ दिनों के बाद उसे पाण्डवों का अनिष्ट करने का एक अवसर मिला कि अचानक क्रोधी दुर्वासा अपने 10,000 शिष्यों के साथ आकर दुर्योधन के अतिथि बने। दुर्योधन घबराया कि यदि मुनि की सेवा टहल में जरा सी भी कमी रह गई तो न जाने मुनि क्या शाप दे दें। इसलिए दुर्योधन ने स्वयं व्यक्तिगत रूप से उनके स्वागत सत्कार का विशेष ध्यान रखा और दुर्वासा एवं उनके 10,000 शिष्यों के निवास, भोजन तथा अन्य सेवाओं में किसी

प्रकार की कोई भी कमी न आने दी। दुर्योधन द्वारा किए गये स्वागत सत्कार से मुनि बहुत प्रसन्न हुए और जाते समय दुर्योधन से कहा—भक्त! वर मांगो! दुर्वासा यदि बिना शाप दिये चुपचाप चले जाते तो यह भी एक बड़ी भारी बात थी। दुर्योधन को दुर्वासा से सम्भावित शाप से मुक्ति मिल गई थी, वह अपने आप में कम नहीं था। किन्तु उसके आनन्द की सीमा न रह गई कि दुर्वासा तो वर मांगने के लिए कह रहे हैं। दुर्योधन यदि कहता तो मुनि से ऐसा वर मांग सकता था जो उसके, उसके परिवार तथा मित्रमण्डल के लिए कल्याणकारी सिद्ध होता किन्तु दुष्ट अपनी दुष्टता कभी नहीं छोड़ता। मक्खी तो घाव पर ही बैठा करती है। दुर्योधन के मन में तो पाण्डवों का अनिष्ट करने की ही धुन समाई हुई थी।

उसने कहा मुनिवर! यदि आप मुझ पर वास्तव में प्रसन्न है तो अपने 10,000 शिष्यों सहित पधार कर जो सम्मान आपने मुझे दिया वही कृपया आप पाण्डवों को भी दें। वे हमारे भाई हैं। मैं अपने समान उन्हें भी सम्मानित होते देखना चाहता हूँ। लेकिन इसके साथ ही इतना और करें कि उनके आश्रम में आप उस समय पधारें जब द्रौपदी सभी पाण्डवों को भोजन कराने के बाद स्वयं भी भोजन आदि से निवृत्त हो चुकी हो। दुर्वासा मुनि 'तथास्तु' कह कर पाण्डवों के आश्रम की ओर अपनी शिष्य मण्डली सहित चल दिये। दुर्योधन की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा क्योंकि उसे पूर्ण विश्वास था कि पाण्डव इस समय वन में बैठे हैं। उनके पास कोई साधन नहीं। इसलिए जब मुनि 10,000 शिष्यों सहित उनके आश्रम में पहुँचेंगे तो उनका समुचित स्वागत करना तो दूर की बात, उन्हें एक समय भोजन भी वे नहीं करा सकेंगे।

इस संबंध में एक पौराणिक कथा है, वह यह है कि पाण्डवों ने जब वन में प्रवेश किया ही था, तब युधिष्ठिर ने तप करके सूर्य से एक अक्षय पात्र प्राप्त कर लिया था। उस पात्र में यह दिव्य शक्ति थी कि जब तक द्रौपदी भोजन न कर लेती, तब तक उस से चाहे कितने ही खाद्य पदार्थ निकाले जाते, वह खाली नहीं होता था। सबको खिलाने के बाद जब द्रौपदी भी भोजन कर लेती तो पात्र की वह विलक्षणता अगले दिन तक के लिए लुप्त हो जाती थी। दुर्योधन जानता था कि यदि दुर्वासा ऋषि पाण्डवों के भोजन से निवृत्त होने से पहले आश्रम में पहुँच गये तो उन सब को एक बार नहीं हज़ार बार भी यदि

भोजन कराना पड़ता तो भी उन्हें कोई असुविधा न होती। इसलिए दुष्ट दुर्योधन ने विशेष रूप से आग्रह किया था कि 10,000 शिष्यों सहित आप उस समय पहुँचे जब सबको भोजन खिलाने के बाद द्रौपदी भी खा चुकी हो और दिव्य अक्षय पात्र मांज कर एक ओर रख दिया हो। क्योंकि ऐसी स्थिति में भोजन न मिलने पर दुर्वासा क्रुद्ध हो जायेंगे। भोजन जैसा अनिवार्य और सामान्य स्वागत भी न पाकर वे पाण्डवों को कोई भयंकर शाप दे डालेंगे। दुर्वासा मुनि शिष्यों सहित पाण्डवों के आश्रम में अचानक ही पहुँच गये। मुनि को आया देखकर युधिष्ठिर अति प्रसन्न हुए। उन्होंने उठकर मुनि को सादर प्रणाम किया और हार्दिक स्वागत भी किया। दुर्वासा बोले–

हम में से किसी ने भोजन नहीं किया है। नदी में स्नान करके हम अभी आते हैं। लौटते ही भोजन तैयार मिलना चाहिए।

इतना कह दुर्वासा मुनि तो शिष्यों सहित नदी में स्नान करने चल दिये और इधर पाण्डव असीम चिन्ता में डूब गये। पांडव एक तो बनवासी, फिर साधनहीन और भोजन भी दो चार का नहीं, 10,000 शिष्यों सहित मुनि दुर्वासा का। इसलिए उनका चिन्ता करना स्वाभाविक ही था और फिर द्रौपदी पाण्डवों और सभी आश्रमवासियों को भोजन कराने के पश्चात् स्वयं भी भोजन से निश्चिन्त् हो उस अक्षय पात्र को धो चुकी थी। अक्षय पात्र अगले दिन तक खाली था और अब उसमें 10,000 तो क्या एक व्यक्ति के लिए भी भोजन नहीं निकल सकता था और इस पर भोजन तैयार करने का समय भी बहुत कम था जब तक वे स्नान करके वापिस लौटते हैं।

पाण्डवों ने सोचा कि आज दुर्वासा मुनि नाराज होकर अवश्य शाप देंगे। द्रौपदी मन ही मन चिन्तित हो उठी और भगवान् से प्रार्थना करने लगी। भगवान् अपने भक्तों की सच्चे हृदय से की हुई प्रार्थना को अवश्य सुनता है। द्रौपदी चिन्ता में डूबी थी और प्रार्थना में मगन थी कि इतने में श्रीकृष्ण घूमते-घूमते वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने भी भोजन माँगा तो द्रौपदी ने कहा कि भैया! अब तो अक्षय पात्र खाली है। इतना कह वह लज्जा से गड़ गई। मुनि दुर्वासा शिष्यों सहित नदी में स्नान करने गये थे, किन्तु समय बहुत बीत गया और वे वापिस नहीं लौटे। श्रीकृष्ण ने भीम से कहा कि मुनि दुर्वासा अभी तक आये नहीं, शीघ्र जाकर शिष्यों सहित उन्हें बुला लाओ। भीमसेन बुलाने गया

और अकेला ही वापिस आ गया । वह आश्चर्य से बोला कि मुनि तो आये ही नहीं । शिष्यों सहित नदी तट से ही आगे की ओर निकल गये हैं । मुझे देखकर बोले– भाई भीम ! मेरी ओर से युधिष्ठिर से क्षमा-याचना कर लेना । मैंने उन्हें भोजन तैयार करवाने का आदेश तो दे दिया था, किन्तु अब हममें से किसी को भी भूख नहीं है । हम इधर से ही जा रहे हैं । यह सुन युधिष्ठिर आदि सभी चकित रह गये । पाण्डवों को तंग करने का दुर्योधन का यह षडयन्त्र भी सफल न हो सका ।

कर्ण दिग्विजय

दुर्योधन द्वैतवन से हस्तिनापुर लौट आया । आयु के साथ-साथ उसकी चिन्ता भी बढ़ने लगी । उसे दुःखी और चिन्ताकुल देखकर एक दिन भीष्म पितामह उसे समझाने लगे कि यदि तुम अपना भला चाहते हो तो पाण्डवों से संधि कर लो । जिस कर्ण पर तुमको गर्व है उसका बल तो गन्धर्वों के साथ युद्ध के समय देख ही लिया है । उसके भरोसे मत रहो । यह बात कर्ण ने सुनी और क्रोध आ गया । वह दुर्योधन से कहने लगा–भीष्म जी सदा हमारी बुराई और पाण्डवों की प्रशंसा करते रहते हैं । सब पाण्डवों ने मिलकर जिन देशों पर विजय पाई थी, मैं अकेला ही उन सब को जीतकर आता हूँ । तब उन्हें मेरे बल का पता चलेगा । ऐसा कह कर कर्ण एक बड़ी सेना लेकर दिग्विजय के लिए निकल पड़ा । थोड़े ही समय में चारों दिशाओं पर विजय प्राप्त कर उसने उनसे कर वसूल कर लिया । वह धन, हीरे मोती, रत्न आदि हाथी, घोड़ों पर लादकर हस्तिनापुर लौट गया । दुर्योधन ने दिग्विजय करके लौटे कर्ण को देख उसका बड़ा स्वागत किया । दिग्विजय के बाद दुर्योधन ने भी राजसूय यज्ञ किया । यज्ञ में देश-विदेश के राजा महाराजा सम्मिलित हुए । सबने दुर्योधन की अधीनता स्वीकार की और यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हुआ ।

अध्याय - 7

युधिष्ठिर एवं यक्ष प्रश्नोत्तरी

एक बार पाण्डव वन में जा रहे थे। पानी की प्यास से दुःखी होकर वे पानी ढूंढने लगे। दूर से एक तालाब दिखाई दिया और क्रमशः युधिष्ठिर की आज्ञा से सहदेव, नकुल, अर्जुन, भीम पानी लेने के लिये वहाँ गये परन्तु इनमें से कोई भी वापिस नहीं आया। इसके पश्चात् युधिष्ठिर स्वयं पानी लेने उस तालाब पर गये। वहाँ चारों भाइयों को मूर्छित देखकर आश्चर्यचकित रह गये। इनके भाइयों पर अस्त्र-शस्त्र का कोई निशान भी नहीं था। परन्तु जब युधिष्ठिर पानी पीने लगे तो तालाब से एक आवाज़ आई–

राजन्! तेरे ये भाई मेरे द्वारा रोके जाने पर भी बलात् पानी पीने लगे थे। अतः मैंने इन्हें मूर्छित कर दिया है। यदि आप को अपना जीवन प्यारा है तो पानी मत पीना। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिए फिर जल पीओ और ले भी जाओ। –वनपर्व 312.42

इसके उपरांत युधिष्ठिर ने यक्ष को देखा और कहा कि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपके प्रश्नों का उत्तर दूँगा। इस प्रकार यक्ष ने युधिष्ठिर से 123 प्रश्न किये थे इनमें से मुख्य प्रश्न निम्नलिखित प्रश्नोत्तर माला में प्रस्तुत किये जाते हैं।

प्रश्न 1 : पृथ्वी से बड़ा कौन है?

उत्तर : माता।

प्रश्न 2 : आकाश से ऊँचा कौन है?

उत्तर : पिता।

प्रश्न 3 : वायु से तेज चलने वाला कौन है?

उत्तर : मन।

प्रश्न 4 : तिनके से तुच्छ क्या है?

उत्तर : चिन्ता।

प्रश्न 5 : विदेश में मित्र कौन है?

उत्तर : धन

प्रश्न 6 : गृहस्थ में मित्र कौन है?

उत्तर : धर्मपत्नी ।

प्रश्न 7 : रोगी का मित्र कौन है?

उत्तर : वैद्य ।

प्रश्न 8 : मरने वाले का मित्र कौन है?

उत्तर : धर्म ।

प्रश्न 9 : अकेला कौन चलता है?

उत्तर : सूर्य ।

प्रश्न 10 : बार-बार कौन जन्म लेता है?

उत्तर : चन्द्रमा ।

प्रश्न 11 : हिम की औषधि क्या है?

उत्तर : अग्नि ।

प्रश्न 12 : बड़ा क्षेत्र कौन सा है?

उत्तर : पृथ्वी ।

प्रश्न 13 : सूर्य का उदय कौन करता है?

उत्तर : ब्रह्म ।

प्रश्न 14 : सूर्य के चारों ओर घूमने वाले कौन हैं?

उत्तर : चन्द्रादि इसके चारों ओर घूमते हैं ।

प्रश्न 15 : सूर्य का अस्त कौन करता है?

उत्तर : धर्म (ईश्वरीय नियम) इसे अस्त करता है ।

प्रश्न 16 : सूर्य किसमें प्रतिष्ठित है?

उत्तर : सत्य ।

प्रश्न 17 : विश्व का महानतम् आश्चर्य क्या है?

उत्तर : संसार के प्राणी प्रतिदिन यमलोक को जाते हैं परन्तु शेष इन्हें देखकर भी स्थिरता की इच्छा करते हैं। यही विश्व का महानतम् आश्चर्य है।

प्रश्न 18 : व्यक्ति का सच्चा साथी कौन है?

उत्तर : धैर्य।

प्रश्न 19 : व्यक्ति किसे गंवाकर धनी होता है?

उत्तर : लोभ।

प्रश्न 20 : व्यक्ति का मरते समय कौन मित्र है?

उत्तर : दान।

प्रश्न 21 : अहंकार क्या है?

उत्तर : महा अज्ञान।

प्रश्न 22 : भाग्य क्या है?

उत्तर : पूर्व जन्म के किये दान का फल ही भाग्य है।

प्रश्न 23 : तप क्या है?

उत्तर : अपने धर्म का पालन करना तप है।

प्रश्न 24 : लज्जा क्या है?

उत्तर : पापाचार से हट जाना ही लज्जा है।

प्रश्न 25 : सुखों में उत्तम क्या है?

उत्तर : संतोष।

अध्याय - 8

पाण्डवों का अज्ञातवास

एक दिन युधिष्ठिर ने मुनियों से कहा कि हम 12 वर्ष तक अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ सहते हुए वनों में निवास करते रहे हैं। अब हमारे अज्ञातवास का एक वर्ष शेष है। इसके लिए आप हमें आज्ञा देने की कृपा करें। मुनियों से आज्ञा लेकर पांचों भाई, द्रौपदी के सहित खड़े हुए और वहाँ से चल दिये। कुछ दूर चलकर वे दूसरे ही दिन से अज्ञातवास करने के लिए परस्पर परामर्श करने हेतु वहीं बैठ गये। परस्पर विचार-विमर्श करके युधिष्ठिर ने निश्चय किया कि मत्स्य देश का राजा विराट बहुत बलवान् है और हमारे वंश पर प्रेम भी रखता है, वह उदार, धर्मात्मा और वृद्ध है। इसलिए हम विराटनगर में ही एक वर्ष तक निवास करें और इतने समय राजा का कुछ काम भी करते रहें। हमारे लिये यही श्रेयस्कर होगा। यह विचार कर पाँचों भाई द्रौपदी सहित विराट नगर के पास पहुँच गये और वन में एक शमी वृक्ष के ऊपर अर्जुन ने सब के अस्त्र-शस्त्र बांधकर टांग दिये। उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र साथ ले जाना इसलिए उचित नहीं समझा, क्योंकि भीम की गदा और अर्जुन का गाण्डीव धनुष पहचाना जा सकता था। विराट्! नगर में पहुँचने से पूर्व पांचों भाइयों और द्रौपदी ने अपने अपने काम के संबंध में परस्पर विचार-विमर्श किया और सर्वसम्मत निर्णय हो जाने पर अपना-अपना वेश बदलकर वे विराट नगर में पहुँच गये।

सबसे पहले युधिष्ठिर ब्राह्मण का वेश बनाकर विराट् की सभा में गया उनका तेज देखकर सब सम्राट् दंग रह गये। युधिष्ठिर ने राजा से कहा मैं ब्राह्मण हूँ और जीविका के लिए आप के पास आया हूँ। राजा ने पूछा तुम क्या कर सकते हो?

बोले युधिष्ठिर – 'ब्राह्मण हूँ मैं' कंक मेरा नाम है।

विराट् ने बड़ी प्रसन्नता से उनको अपने यहाँ रख लिया और वे छिपकर वहीं रहने लगे। इसके बाद भीम हाथ में चिमटा लेकर आये। भीम को देखकर विराट् ने कहा कि तुम कौन हो, और यहाँ क्यों आए हो। भीम ने

अपना नाम बल्लब बताया और कहा कि मैं महाराज युधिष्ठिर का रसोइया था। अतः राजा ने उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया।

इसके बाद द्रौपदी मलिन वस्त्रों में राजा के रनवास में पहुँची। विराट् की रानी का नाम सुदेषणा था। वह पूछने लगी—तुम कौन हो और यहाँ किस लिए आई हो? द्रौपदी ने बताया कि मेरा नाम सैरन्ध्री है, मैं आपके अधीन रहकर कुछ काम करना चाहती हूँ। सुदेषणा ने सन्देह प्रकट करते हुए उससे कहा कि तुम्हारे सौन्दर्य से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम कोई रानी या किसी अन्य बड़े कुल की हो, किन्तु यहाँ तुम प्रपंच रच रही हो। तब द्रौपदी बोली, मेरा नाम सैरन्ध्री है और शृंगार सेवा का कार्य करती हूँ। सुदेषणा ने बड़ी प्रसन्नता के साथ द्रौपदी को अपने रनवास में शृंगार के लिए रख लिया।

उसके बाद सहदेव ग्वाले के वेश में पहुँचे। राजा के पूछने पर—सहदेव ने कहा कि मैं युधिष्ठिर के यहाँ गाय पालन का काम करता था। राजा ने कहा—तुम ग्वाले प्रतीत नहीं होते हो! तुम तो कोई तेजस्वी ब्राह्मण या वीर क्षत्रिय प्रतीत हो रहे हो। सहदेव कहने लगे—आप भ्रम छोड़कर मेरा विश्वास कीजिए और जो मेरा पहला कार्य है, वहीं मुझे दे दीजिए। वहाँ सब लोग मुझे, 'तन्त्रिपाल' कहते थे। उनकी बात सुनकर राजा ने उन्हें गोशाला का काम सौंप दिया।

अब अर्जुन नपुंसक का वेश बनाकर राजा की सभा में पहुँचे। उनके शरीर में पराक्रम की झलक मार रही थी। राजा ने आश्चर्य भाव से आदर के साथ उनको बुलाकर उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि आप अपना पूरा परिचय दीजिए। अर्जुन ने कहा मेरा नाम बृहन्नला है। मैं गायन विद्या, नृत्य में अत्यंत निपुण हूँ। अर्जुन की बात सुनकर राजा ने कहा कि उत्तरा की शिक्षा का तुम्हें कार्य सौंपता हूँ, तुम यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहो। उत्तरा राजा विराट् की पुत्री का नाम था।

इसके बाद नकुल पहुँचे। राजा ने पूछा कि तुम कौन हो और यहाँ क्यों आये हो? नकुल ने कहा मेरा नाम ग्रंथिक है। मैं पाण्डवों की अश्वशाला में घोड़ों आदि की देखभाल और सेवा का कार्य करता था। अपने श्रेष्ठ भाइयों के समान नकुल भी वहाँ रहने लगे और राजा की अश्वशाला की देखभाल

करने लगे। जो पाण्डव कभी चक्रवर्ती राजा थे, आज एक छोटे से राजा के अधीन छिपकर अपने दिन काट रहे हैं। यह विधि की विडम्बना ही तो है।

विराट् नगर के राजा के पास जाने से पूर्व धौम्य ऋषि ने उन्हें समझाया था कि राजा उस अग्नि की तरह है जिसके बहुत निकट चले जाने पर व्यक्ति झुलसने और दूर चले जाने पर ठिठुरने लगता है। इसलिए राजा के साथ आवश्यकता से अधिक मेलजोल नहीं रखना चाहिए और न ही उसकी उपेक्षा करनी चाहिए। राजसेवक हर समय असुरक्षित रहता है—चाहे वह राजा का कितना प्रियपात्र क्यों न हो। इसीलिए जो राजसेवक विवेकशील होता है वह पदच्युत होने की तैयारी निरन्तर बनाये रखता है। राजा के वाहन और आसन का प्रयोग राजसेवक को कदापि नहीं करना चाहिए। राजा के सामने न तो अपना सुख प्रकट करना चाहिए और न ही दुःख। राजा सम्मानित करे चाहे अपमानित राजसेवक को तटस्थता का ही व्यवहार करना चाहिए। अच्छे से अच्छा राजा भी विश्व में सर्वाधिक अविश्वसनीय होता है। राजसेवक कभी किसी अन्य राजसेवक से ईर्ष्या न करे, न किसी से रिश्वत ही ले। यह भी असम्भव नहीं कि राजा योग्य जनों की उपेक्षा करे और निरे मूर्ख जनों को उच्च पदों पर बिठा दे। ऐसे अवसर पर कुण्ठित नहीं होना चाहिए, किन्तु मूर्ख पदाधिकारियों से अधिकाधिक सावधान अवश्य रहना चाहिए। धौम्य ऋषि ने इसी प्रकार की अन्य भी अनेक उपयोगी बातें उन्हें समझाई और उनसे विदा ले ली। पाँचों पाण्डवों और द्रौपदी को राजा विराट् ने उन्हीं पदों पर नियुक्त कर दिया जिन पर वे काम करना चाहते थे।

1. कीचकवध

पाण्डव विराट् के राज्य में कार्य करने लगे। कार्य करते हुए थोड़े ही दिन हुए थे कि कीचक के कारण एक नई समस्या उत्पन्न हो गई। कीचक विराट् का साला था। वह इतना बलिष्ठ था कि भीम और बलराम के अतिरिक्त देश का कोई भी व्यक्ति उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। वह केवल बलशाली ही नहीं अपितु प्रतापी भी था। उसने अनेक नायकों का संघ बनाकर राजा विराट् का राज्य बहुत बढ़ा दिया था। बल तो विराट् का बढ़ा था, किन्तु उसका वास्तविक उपभोक्ता कीचक ही था। देश में और देश के

बाहर उसकी धाक दिन प्रतिदिन जमती जा रही थी। विराट् को भी यह अनुभव होने लगा था कि कीचक के बिना उसका गुजारा नहीं है। देशवासियों का यह कथन सत्य ही था कि मत्स्य देश के सिंहासन पर तो विराट् बैठता है किन्तु वास्तविक राजा तो कीचक ही है। कीचक ने अपनी बहन रानी सुदेषणा की दासी बनी सैरन्ध्री को देखा और वह उस पर मुग्ध हो गया और उसे प्राप्त करने की कामना करने लगा।

कीचक प्रतापी शासक था, इसलिए दासी को प्राप्त करना भला उसके लिए क्या मुश्किल था। कीचक ने सैरन्ध्री से प्रणय निवेदन किया तो उसने उसके निवेदन को तत्क्षण ठुकरा दिया। दासी द्वारा उसके निवेदन को ठुकरा देने से उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। सैरन्ध्री के प्रति उसकी कामवासना उद्दीप्त होने लगी। सैरन्ध्री ने उसे चुनौती दे दी कि मैं गन्धर्व पत्नी हूँ मुझे प्राप्त करने की आशा न रखना। यदि आपने किसी भी प्रकार सीमा का उल्लंघन किया तो गन्धर्वों के क्रोध के भागी आप ही होंगे। मेरे पतिदेव अत्यन्त क्रोधी हैं। वे हत्या कर देने से भी नहीं हिचकते। आपको सावधान कर देना मेरा कर्त्तव्य है। इसलिए आप कृपया मुझसे दूर ही रहें। चुनौती और इन्कार से काम वासना और अधिक उद्दीप्त हुआ करती है। सैरन्ध्री को छेड़ने में कीचक को बेहद आनन्द मिलने लगा। उसे आशा यह थी कि छेड़छाड़ कर वह सैरन्ध्री को द्रवित कर लेगा और वह भी उससे प्रणय करने के लिए उत्सुक हो उठेगी।

परन्तु जैसे-जैसे सैरन्ध्री निषेध करती गई, कीचक अधिकाधिक निकट आने का प्रयास करने लगा। सैरन्ध्री ने संकोच के कारण अभी तक रानी से कीचक की शिकायत नहीं की थी। फिर शिकायत करने का कोई अर्थ भी तो नहीं था क्योंकि रानी स्वयं भी अपने भाई के साथ मिल गई थी और वह भी सैरन्ध्री का मन कीचक की ओर मोड़ने के उपाय करने लगी थी। सैरन्ध्री चिन्तित हुई और उसके पैरों तले से जमीन खिसक गई। किन्तु उसने एक सेवा के रूप में वहाँ उपस्थित पाण्डवों को इस बात से, इस भय से सूचित नहीं किया था कि यदि उन्होंने झुंझलाकर कीचक के प्राण ले लिये तो सारे देश का ध्यान इसी ओर आकर्षित हो जाएगा और सम्भव है कौरव हमारे अज्ञातवास के एक वर्ष का समय पूरा होने से पूर्व ही दोबारा सारा भेद प्राप्त कर लेंगे।

एक दिन कीचक की कामवासना सीमा का अतिक्रमण कर बैठी, उससे सैरन्ध्री हैरान हो गई। कीचक ने उससे अनेक बार स्नेहपूर्वक आग्रह किया, छेड़छाड़ में रानी सुदेषणा सहयोग देती रही। इसके बावजूद कीचक का काम नहीं बना और वह जबरदस्ती करने पर उतारू हो गया। कीचक के इस व्यवहार से स्वयं लज्जा भी लज्जित हो गई जब उसने सैरन्ध्री का हाथ पकड़कर खींचा ताकि वह उसे अपनी गोद में गिरा सके। किन्तु सैरन्ध्री बलपूर्वक अपना हाथ छुड़ाकर रोती बिलखती, चीखती चिल्लाती राजसभा की ओर भागी। निर्लज्ज कीचक ने उसका पीछा किया।

उस समय राजा विराट् और अनेक मन्त्री राजसभा में उपस्थित थे, किन्तु हैरान होकर सब के सब चीत्कार करती सैरन्ध्री की ओर देखते रहे। दुष्ट कीचक न सबकी आँखों के सामने द्रौपदी को दबोचना और खींचना चाहा। इस संघर्ष में निस्सहाय सैरन्ध्री भूमि पर गिर पड़ी और उसका आर्तनाद वायुमण्डल को चीर कर अनन्त की ओर पहुँच गया। भरी सभा में कीचक ने सैरन्ध्री का अपमान किया, उसे ठोकर मारी और गन्दे वचन भी कहे। सभा में किसी की भी हिम्मत न हुई कि उसके विरोध में जबान भी हिला सके। विराट् की दृष्टि शर्म के मारे नीचे हो गई और अन्य सभी सभासद भी लज्जा, क्रोध और आवेश में भर जमीन में गड़ गये किन्तु किसी के मुख से एक भी शब्द न निकला, एकदम सन्नाटा छा गया। सबने यही समझा कि जिस पर कीचक ने हाथ डाला है, वह एक मामूली दासी ही है। कीचक का आतंक इतना था कि उसके भय से सभी डरे हुए थे। यदि वे सैरन्ध्री का वास्तविक परिचय पा लेते तो भी शायद उनकी हिम्मत उस समय बोलने की न होती।

कौरवों की द्यूत सभा में द्रौपदी की लज्जा दांव पर लग चुकी थी। अब विराट् की राजसभा में दासी के रूप में उसकी लज्जा दूसरी बार दांव पर लगी। उसकी आँखों में सावन भादों की बरसात के समान आँसू उमड़ पड़े। वह बच्चों की तरह जोर-जोर से रो रही थी। अचानक उठी और अपने कपड़ों को सम्भालती हुई, थर-थर कांपती वहाँ से चली गई। वह इतनी दीन और असहाय हो गई कि उसने अपने वास्तविक परिचय का खुल जाने की भी

चिन्ता न की और वह उसी रात चुपके से जाकर रसोईघर में गहरी नींद सोते भीम को जगाकर रोती हुई कीचक की बात सुनाकर बोली—अब मुझे कितना अपमान और सहना पड़ेगा? जब द्रौपदी के मुख से भीमसेन ने कीचक की कुचेष्टा और द्रौपदी के अपमान की बात सुनी तो उसका क्रोध एक दम भड़क उठा और चला कीचक का वध करने। क्रोध में वह अपने गुप्त रूप को भूल बैठा। किन्तु द्रौपदी ने उसे रोका और समझाया कि अज्ञातवास के दिन अभी शेष है, इसलिए कीचक के गुप्त रूप से वध की योजना बनानी चाहिए।

अगले दिन प्रातः जब कीचक सैरन्ध्री से मिला तो बोला कल मैंने भरी सभा में तुम्हें ठोकर मारकर गिरा दिया था, उस समय क्या किसी माई के लाल में इतना साहस था जो उठकर मेरे विरोध में मेरे सम्मुख एक भी शब्द कहता। आत्मसमर्पण करने से तुम कब तक बचोगी? तुम स्वयं चलकर आओ, जी भरकर प्यार करो और महारानी जैसा आदर पाओ, रातों रात तुम्हारा सामाजिक सम्मान कुछ से कुछ हो जायेगा, सोचो तो जरा। सैरन्ध्री अपमान के मारे अन्दर से तो धू-धू कर जल रही थी, किन्तु बाहर से लज्जा और संकोच का भाव दिखाकर बोली—'सेनापति! मैं तो सोचने को तैयार हूँ, किन्तु आप सोचे समझे बिना मुझे सबके सामने ही छेड़ते रहते हैं। क्या अपने पति और लोकनिन्दा का भय मुझे बिल्कुल नहीं लगता होगा?

मैं सार्वजनिक रूप से आपकी कैसे बन सकती हूँ? हाँ, यदि आप चाहे तो गुप्त रूप से हमारा मिलन अवश्य हो सकता है। सुनते ही कीचक आनन्द से नाच उठा और बोला—कहाँ, कैसे, कब? रात को नृत्यशाला में चुपके से मिलें? दिन में तो वहाँ स्त्रियाँ नाच गाना सीखती हैं। मगर रात में वहाँ कोई नहीं होता। मैं ठीक आधी रात के समय वहाँ पहुँच जाऊँगी और द्वार का कुण्डा उतार कर आपकी प्रतीक्षा में लेटी रहूंगी। योजना के अनुसार ठीक आधी रात को बंद हुए द्वार खोलकर कीचक ने जब नृत्यशाला में प्रवेश किया, तो अंधकार में उसने देखा कि सचमुच पलंग पर कोई लेटी हुई है। मन्द-मन्द वायु के झोंकों से उसकी साड़ी का छोर उड़ रहा था। इस उड़ते हुए साड़ी के छोर ने कीचक का काम न जाने कितना गुना बढ़ा दिया। काम के बाण से बिंधा हुआ कीचक हर्ष की हुंकार के साथ पलंक पर जा बैठा और उस पर

हाथ फेरने लगा। आप समझते हैं कि पलंग पर कौन लेटा हुआ था? पलंग पर सैरन्ध्री के कपड़े पहनकर भीमसेन लेटा हुआ था। जब कीचक ने सैरन्ध्री समझकर उस पर अपना हाथ फेरा तो जिस प्रकार छिपकली की जीभ किसी मक्खी पर झपटा लगाती है, उसी प्रकार भीमसेन ने कीचक पर झपटा लगाया। कीचक तो इसके लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं था।

अंधेरे में उसने समझा कि सैरन्ध्री का गन्धर्व पति अचानक आ पहुँचा है और युद्ध उसके साथ हो रहा है। उसने अपने ऊपर प्रहार करने वाले को अभी ठीक से पहचाना भी नहीं था कि भीम उसके ऊपर भीषण प्रहार कर चुका था। भीम के प्रहार से कीचक का सिर झनझना उठा, किन्तु फिर भी वह देर तक भीमसेन से टककर लेता रहा। नृत्यशाला के अंधेरे कोने में सैरन्ध्री को बहुत देर तक पता ही न चला कि कौन भीमसेन है और कौन कीचक। जब एक व्यक्ति हारता सा जान पड़ा तो सैरन्ध्री ने उसे कीचक समझा। भीमसेन उसे दबोच कर फर्श पर इस तरह रगड़ने लगा जैसे बन्दर सांप की गर्दन पकड़कर उसके सिर को भूमि पर रगड़ता है। दोनों कांटे के पहलवान थे और बराबर की जोर के थे। जिस तरह बाली और सुग्रीव लड़े थे, उसी तरह भीम और कीचक का भी युद्ध हुआ। इतने सम्पन्न शत्रु को भी भीमसेन ने रगड़कर उसका कचूमर निकाल दिया कि वास्तव में उसकी लाश पहचानी नहीं जाती थी कि यह कीचक की ही लाश है। भीम ने उसे घसीट-घसीट कर और पटक-पटक कर एक गोल मांस का लोथड़ा सा बना दिया था।

कीचक के वध से निपटकर भीमसेन कुछ क्षण तो अंधकार में ही खड़ा रहा। फिर सैरन्ध्री से विदा लेकर वह स्नान करने चला गया। फिर सैरन्ध्री ने नृत्यशाला के रक्षकों का जगाकर कहा—मुझे तंग करने आये कीचक को मेरे गन्धर्व पति ने मार डाला है। जाओ उसकी लाश सम्भालो। भविष्य में भी यदि कोई मुझे तंग करेगा तो उसकी भी यही दशा होगी। सेनापति कीचक के वध का समाचार सुनकर रक्षक एक दम हैरान रह गये। मशालें जलाकर वे नृत्यशाला में पहुँचे तो देखा कि उसका रुधिर और मांस जगह-जगह बिखरा पड़ा हुआ है। उसे उन्होंने कीचक के रूप में पहचाना भी और नहीं भी पहचाना। राजा विराट् को यह समाचार सुनाने के लिये वे दौड़ पड़े और सोते

से जगाकर जब उसे यह बात सुनाई तो प्रतापी राजा विराट् भी एकदम हैरान रह गये। दुर्योधन ने यह पता लगाने के लिए कि पाण्डव जीवित है अथवा मर गये हैं और यदि जीवित हैं तो कहाँ है और क्या कर रहे हैं –चारों ओर अपने गुप्तचर भेजे, किन्तु पाण्डवों का कहीं भी कुछ पता नहीं चला।

2. कौरवों का मत्स्य देश पर आक्रमण

कीचक के वध का समाचार देश-देशान्तर में फैल गया। कौरवों को भी मालूम हो गया कि किसी ने कीचक का वध कर डाला है, किन्तु वध करने वाला कौन है यह विश्वास नहीं हो सका। कीचक के वध से कर्ण, दुर्योधन, शकुनि और अन्य कौरव प्रसन्न हुए। इसलिए नहीं कि उनकी कीचक से कोई शत्रुता थी, अपितु इसलिए कि कीचक के वध से पाण्डवों को पहचाना जा सकता है। कीचक को मार सकने योग्य केवल दो ही व्यक्ति देश में है–बलराम और भीम। बलराम और कीचक के मध्य तो शत्रुता के कोई अंकुर नहीं थे, इसलिए यही कहना होगा कि कीचक का वध भीम ने ही किया है। कई महीनों के अथक परिश्रम के बाद भी कौरव पाण्डवों का पता नहीं पा सके थे। अब पाण्डवों के अज्ञातवास का काल समाप्त होने से पूर्व ही पता चल जाये अथवा उनमें से किसी एक का भी पता चल जाए तो शर्त के अनुसार उन्हें फिर बारह वर्ष तक अज्ञातवास करना पड़ेगा। उन्होंने अनुमान लगाया कि कीचक का वध करने वाला भीम ही है, और कोई नहीं।

यह अफवाह भी उनके कानों में पड़ी कि कीचक के वध का कारण एक स्त्री है, जिसकी नियुक्ति कुछ मास पूर्व ही विराट् ने अपने रनवास में की थी। पाण्डवों का भेद खुल जाने की आशा से कौरव बड़े प्रसन्न हुए और कौरवों तथा उनके साथियों की तुरन्त एक बैठक हुई जिसमें विचार किया गया कि छिपे हुए पाण्डवों या अकेले भीम का ही पता कैसे लगाया जाये? दुर्योधन ने प्रस्ताव किया कि अगर हम राजा विराट् पर आक्रमण कर दें तो कैसा रहे। कीचक के वध से वह पहले ही घबराया हुआ है और हमारे अचानक हमले से वह और भी घबरा जायेगा। पाण्डवों की धमनियों में क्षत्रियों का रुधिर है। यदि वे वहाँ हुए तो हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठे रहेंगे। विराट् की सहायता के लिए वे अवश्य रणभूमि में उतरेंगे और वहाँ वे बड़ी आसानी से पहचाने जा

सकेंगे । कर्ण ने कहा कि –हमारे आक्रमण का लक्ष्य मत्स्य देश की भूमि प्राप्त करना या विराट् पर विजय प्राप्त करना नहीं, अपितु पाण्डवों को ढूंढना ही है । इसलिए यदि मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये तो हमें एक की बजाय इकट्ठे दो दिशाओं से आक्रमण कर देना चाहिये । मेरा कहना यह भी है कि हमें विराट् की गौएं लेकर भागना चाहिये, गौओं की रक्षा के लिए पाण्डव अवश्य ही आगे आयेंगे ।

कर्ण के प्रस्ताव के अनुसार निर्णय लिया गया कि त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा मत्स्य देश पर दक्षिण की ओर से आक्रमण कर दें और जब विराट् अपनी सेना के साथ दक्षिण दिशा को कूच कर चुका हो, तो उसके पीछे उत्तर की दिशा में अचानक हमारे वीर जा टूटें । राजा विराट् अकेला है और बूढ़ा है, इसलिये वह दो दिशाओं को एक साथ नहीं सम्भाल सकेगा, इससे भी सम्भव है कि पाण्डव प्रकट हो जायेंगे । सुशर्मा ने दक्षिण की ओर से आक्रमण कर दिया और युद्ध होने लगा । विराट् कीचक का नाम लेकर शोक सागर में डूबा जा रहा था और कह रहा था कि सुशर्मा ने न जाने कितनी हानि की होगी । कीचक ! यह सब तेरे न रहने के कारण ही हुआ है ।

इतने में कंक रूपी युधिष्ठिर ने राजा विराट् से कहा कि महाराज यदि आप मेरी बात सुनें तो मैं कुछ कहूँ । राजा ने कहा, कहो । कंक बोला कि कीचक को अब बुलाया नहीं जा सकता । उसकी जगह दूसरा सेनापति खड़ा कर देना चाहिये । चाहे कीचक जैसा सैन्य संचालन तो कोई दूसरा नहीं कर सकेगा । किन्तु कुछ न करने से कुछ करना भी तो अच्छा है । आपको शायद मालूम नहीं कि आपका नया अश्वपाल ग्रंथिक तथा नया ग्वाला भी इस मामले में अच्छे उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं । इसके अतिरिक्त स्वयं मैं भी कवच धारण कर युद्धभूमि में उतरने में समर्थ हूँ । यदि आपकी अनुमति हो तो हम भी युद्धक्षेत्र में आकर आपका बल बढ़ाने में सहायक बनें । यह तो आपको पता ही है कि हम किसी न किसी रूप में महाराजा युधिष्ठिर के यहाँ रहते थे और उन्होंने हमें शौकिया युद्ध कला का प्रशिक्षण दिया था ।

राजा विराट् ने आज्ञा दे दी । वह स्वयं तो रनवास में ही रुका रहा और शेष चारों अपने बदले हुए वेश में ही राजा के साथ रणभूमि में निकल पड़े ।

सुशर्मा की सेना इतनी विशाल और सुसंगठित थी कि उसके आक्रमण ने विराट् को एक बार तो बिल्कुल कुचल डाला था। पाण्डव कहीं पहचाने न जायें, इसलिए अपने कौशल का परिचय खुलकर नहीं दे रहे थे। किन्तु जब सुशर्मा ने विराट् को कैद कर रथ में बिठा लिया और विजय का शंख बजाते हुए अपनी छावनी की ओर कूच कर दिया तो पाण्डवों से न रुका गया और युधिष्ठिर के आदेश से भीम, नकुल, सहदेव ने अपनी शेष सेना से ऐसा व्यूह बनाया और भारी आक्रमण किया कि सुशर्मा के पाँव उखड़ गये। पाण्डवों ने न केवल विराट् को छुड़ा ही लिया किन्तु सुशर्मा को क़ैद भी कर लिया।

इस संघर्ष में सुशर्मा पाण्डवों को पहचान न सका। विराट् की विजय और सुशर्मा की पराजय के समाचार से मत्स्य देश में हर्ष की लहर दौड़ी ही थी कि उत्तर की ओर से दुर्योधन ने जबरदस्त सेना के साथ अचानक धावा बोल दिया। उसके साथ भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि महारथी भी थे। कौरव सेना को रोकने वाला मत्स्य देश में कोई नहीं था। वह अन्दर घुसती ही चली गई और ठीक राजधानी के अन्दर घुसने ही वाली थी। विराट् अभी तक दक्षिण में ही था। दीख रहा था कि जब तक विराट् वापिस पहुँचेगा तब तक तो सारी राजधानी लूट ली जायेगी। कौरव सेना राजधानी की सीमा पर स्थित ग्वालों की बस्तियों में घुस कर गायों पर कब्ज़ा करने लगी। ग्वालों में हाहाकार मच गया। उनका मुखिया दौड़ता हुआ राजमहल पहुँचकर रो रोकर पुकार मचाने लगा। मगर वहाँ सुनता कौन? सारी सेना तो दक्षिण में ही थी।

राजभवन में ले देकर केवल अकेला राजकुमार उत्तर ही था जिसके सामने कुछ फरियाद की जा सकती थी। किन्तु राजकुमार अभी अल्प व्यस्क ही थे, उसने कभी युद्धभूमि के दर्शन भी नहीं किये थे। फिर भी ग्वालों के मुखिया का रुदन सुनकर उसे क्रोध आ गया। वह ललकारता हुआ बोला—यदि मुझे कोई योग्य सारथी मिल जाये तो मैं अकेला ही जाकर शत्रु को कुचल डालूँ और एक-एक गाय को छुड़ा लाऊँ। किन्तु मेरे पास कोई योग्य सारथी नहीं है, तुम किसी योग्य सारथी को ढूंढ लाओ। बृहन्नला नाम का नपुंसक रथ चलाने की विद्या में बहुत कुशल है, इसने यह विद्या अर्जुन से सीखी है। यदि आप उत्तरा से कहे तो सम्भव है कि वह उसके कहने से

आपका सारथी बनना स्वीकार कर ले। उत्तर ने अपनी बहिन उत्तरा से कहा और उत्तरा के कहने से उसने सारथी बनना स्वीकार कर लिया।

आज पाण्डवों के अज्ञातवास का एक वर्ष पूरा हो चुका था, इसलिए अर्जुन शमी के वृक्ष पर से अपने अस्त्र-शस्त्र ले आया और उत्तर के रथ पर जा बैठा। युद्ध के मैदान में पहुँचकर उत्तर ने कौरवों के बड़े-बड़े महारथियों को देखा तो वह घबरा गया और भयभीत हो कांपने लगा, उसका शरीर रोमांचित हो गया और उसके हृदय में जो वीरता के भाव थे वे लुप्त होने लगे। वह बोला कि हम तो व्यर्थ ही मरने आये हैं। इस सेना से युद्ध करना तो दूर, मुझ से तो देखा भी नहीं जाता। मैं तो मरा सा जा रहा हूँ। बृहन्नला ने उसे समझाया किन्तु उसका भय कुछ भी दूर नहीं हुआ। वह अपने हाथ से धनुष बाण फेंक रथ से कूदकर भागने लगा। अर्जुन ने झट से दौड़कर पीछे से उसकी चोटी पकड़ ली और कहा देखो। इस प्रकार युद्ध से भागना घोर निन्दित कार्य है, क्षत्रिय का धर्म या तो युद्ध में विजय प्राप्त करना अथवा युद्ध में प्राण त्याग देना ही है।

इतना कह अर्जुन ने हँसते हुए उसे फिर रथ पर ला बैठाया और कहा कि यदि तुम युद्ध नहीं कर सकते तो तुम सारथी बन जाओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा और कौरवों से युद्ध भी करता रहूँगा। जब उत्तर माना ही नहीं तब अर्जुन ने उसे अपना वास्तविक परिचय दे दिया, क्योंकि आज पाण्डवों के अज्ञातवास का एक वर्ष समाप्त हो चुका था। कौरवों के साथ युद्ध होने लगा। अर्जुन ने खूब पराक्रम दिखाया, जिसे देख सब आश्चर्य में डूब गये। बात ही बात में कौरवों की सेना में खलबली मच गई। एक-एक करके सभी अर्जुन से लड़े। कर्ण लड़ा वह मूर्च्छित हो गया। तत्पश्चात् अर्जुन भीष्म पितामह के सामने गये और उनके रथ की ध्वजा एक ही बाण से काट गिराई। दुःशासन अपने रथ से कूदकर अपने प्राण बचाता हुआ भाग गया। इसके बाद कौरव सेना के महारथियों ने मिलकर अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। अर्जुन का सामना करना कोई आसान खेल नहीं था। उसके बाणों से डरकर कौरवों के रण योद्धा चुपचाप रणक्षेत्र से भाग गये। अर्जुन ने कौरवों को हराकर विराट् की गाय छुड़ा ली और जय मनाते हुए वापिस राजधानी में आ

गये । कुसंग का प्रभाव यह हुआ कि भीष्म भी गायें हरने चले गये ।

उनके पहुँचने से पूर्व ही दूत ने विराट् को उत्तर के विजय का समाचार सुनाया तो उसके आनन्द की सीमा न रही। वह अनायास ही बोल पड़ा—अद्‌भुत ! अपने प्राण प्यारे पुत्र से मुझे ऐसे ही शौर्य की आशा थी । कैसा आश्चर्य ! अब तक पता ही नहीं था कि मैं कैसे नर-शार्दूल का पिता हूँ । जाओ राजकुमार के स्वागत की तैयारियाँ करो । आज तो ऐसी खुशी का दिन है कि क्या कहा जाये । वह बार-बार युधिष्ठिर से उत्तर की प्रशंसा करने लगा । युधिष्ठिर ने कहा कि जिसका सारथी बृहन्नला हो, वह क्यों न विजय होगा । यह बात विराट् को कुछ अच्छी सी नहीं लगी । इतने में उत्तर भी सेना सहित वापिस आ विराट् के सामने पहुँचा । हर्षित विराट् ने अपने पुत्र को गले लगाया । उसी समय उत्तर ने छिपे हुए पाण्डवों का वास्तविक परिचय विराट् को दे दिया ।

राजा विराट् ने उनका परिचय पाया तो आश्चर्य और हर्ष में डूब गये तथा युधिष्ठिर से बार-बार क्षमा मांगने लगे और युधिष्ठिर को बार-बार गले लगाते हुए बोले—पाँचों पाण्डवों और द्रौपदी ने अज्ञातवास का समय हमारे यहाँ बिताया, इससे बड़ा सौभाग्य भला हमारा क्या हो सकता है । इस अवधि में जाने या अनजाने हमसे अनेक भूलें हुई होंगी, उनके लिए क्षमा चाहता हूँ । युधिष्ठिर ने सम्राट् से कहा कि हमने अपने अज्ञातवास का एक वर्ष आपके यहाँ बड़े सुख से रहकर व्यतीत किया है, इसके लिए हम आपके बड़े कृतज्ञ हैं और आपका बहुत बहुत धन्यवाद करते हैं ।

दुर्योधन, भीष्म, कर्ण आदि जब दक्षिण से उत्तर के साथ युद्ध कर रहे थे तो उन्हें संशय हुआ कि उत्तर का सारथी हो न हो अर्जुन ही है । इसलिये दुर्योधन के दूत राजा विराट् के दरबार में आकर युधिष्ठिर से मिले बोले कि हे कुन्तीपुत्र ! अर्जुन ने इतनी उतावली की कि अवधि पूर्ण होने से पहले ही गाण्डीव की टंकार करके स्वयं को प्रकट कर दिया था । अतः महाराज दुर्योधन ने निवेदन किया है कि पूर्वनिश्चित् शर्तों के अनुसार सभी पाण्डव पुनः बारह वर्ष का बनवास और फिर एक वर्ष का अज्ञातवास भी स्वीकार कर लें । युधिष्ठिर इस पर हँसकर दूतों से बोले—आपके महाराज का निवेदन

हमने सुना, अब हमारा भी निवेदन उन तक पहुँचा देने का कष्ट करें—दुर्योधन से कहें कि अर्जुन ने गाण्डीव की टंकार अज्ञातवास की अवधि पूर्ण होने के बाद की थी। ज्योतिष के पण्डितों और स्वयं भीष्म पितामह से सलाह करके इसका निश्चय किया जा सकता है। इसके बाद पाँचों पाण्डव और द्रौपदी मत्स्य देश के ही एक नगर अपलव्य में प्रकट रूप से रहने लगे। समस्त देश में दूतों द्वारा यह समाचार पहुँच गया कि पाण्डव अब मत्स्य के उपलव्य नगर में रहते हैं।

यह सुन उनके रिश्तेदार, मित्र और हितैषी उपलव्य की ओर कूच करने लगे जिससे कि भविष्य के लिए कोई योजना तैयार की जाये। अर्जुन की पत्नी सुभद्रा और पुत्र अभिमन्यु को साथ लेकर बलराम और श्रीकृष्ण तुरन्त ही द्वारका से उपलव्य आ पहुँचे। साथ में अनेक यादव भी आये। द्रौपदी के पिता राजा द्रुपद, भाई धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी के पुत्र जब वहाँ पहुँचे तो उनके साथ तीन अक्षौहिणी सेना थी। काशिराम और वीरशैव्य भी अक्षौहिणी सेना लेकर आये। पाण्डवों और राजा विराट् ने समस्त पधारे हुओं का शंख बजाकर स्वागत किया। तत्पश्चात् राजा विराट् ने पाण्डवों से अपना संबंध और अधिक करने की इच्छा से महाराज युधिष्ठिर से प्रार्थना की कि महाराज! आप अर्जुन का विवाह उसकी पुत्री उत्तरा से कर दें। उन्होंने कहा कि अर्जुन ने उत्तरा को नाच गान सिखाया है, इसलिये वह तो हमारी पुत्री के ही समान है।

धर्मशास्त्र यही कहते हैं। इसलिये इसके साथ अर्जुन का विवाह तो नहीं हो सकता। यदि हमारे साथ अपना सम्बन्ध बढ़ाना ही चाहते हैं, तो उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ हो सकता है। राजा विराट् ने युधिष्ठिर की बात स्वीकार कर ली और अभिमन्यु का विवाह उत्तरा के साथ विधिपूर्वक सम्पन्न हो गया। श्रीकृष्ण अभिमन्यु के मामा लगते थे। उन्होंने विवाह में द्वारका से लाया हुआ बहुत सा धन-धान्य भेंट किया। इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक राजा महाराजा जो उस समय उपस्थित थे, उन्होंने भी भेंट में पर्याप्त धन रत्न आदि समर्पित किये।

अभिमन्यु के विवाह के उपरांत आगामी कार्यक्रम के विचार विमर्श के

लिये उपस्थित सभी राजाओं की बैठक हुई। सभा में सर्वप्रथम श्रीकृष्ण ने बहुत ही महत्वपूर्ण भाषण दिया। उन्होंने पहले तो 12 वर्षों का बनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास कठोर कष्ट उठाकर भी पूरा करने के लिए पाण्डवों को बधाई दी। तत्पश्चात् वे बोले कि युद्ध से कौरवों और पाण्डवों दोनों ही पक्षों की हानि होगी, इसलिये युद्ध को टालने के हर सम्भव उपाय करने चाहिये। इस दृष्टि से सर्वप्रथम दुर्योधन के साथ सन्धि करना ही उचित रहेगा। किसी योग्य व्यक्ति को दूत बनाकर शीघ्र ही भेजा जाना चाहिए। जो उसे यह समझाये कि जुए के बहाने उसने जो पाण्डवों का राजपाट छीन लिया है, उसे लौटा देने में ही दोनों पक्षों का कल्याण है।

किन्तु बलराम की सम्मति इससे भिन्न थी। उसने पाण्डवों से सहानुभूति प्रकट करते हुए भी श्रीकृष्ण के प्रस्ताव का खण्डन किया और कहा कि युधिष्ठिर ने अपनी निश्चित् हार से अवगत होते हुए भी बड़े बूढ़ों की सलाह को अनसुनी करके जुए का विनाशकारी खेल खेला और उसमें सब कुछ गंवा दिया। फिर उन्हें अपना राज-पाट वापिस मांगने का क्या अधिकार है? यह पहले से ही निर्धारित नहीं कर लिया गया था कि यदि पाण्डवों ने बनवास और अज्ञातवास की शर्तों को पूरा कर दिखाया तो उन्हें राजपाट वापिस दे दिया जायेगा। इसलिये, यदि उन्होंने शर्तें पूरी करके दिखाई है तो भी राजपाट वापिस मांगने का उन्हें कोई अधिकार नहीं। अब तो उन्हें सामान्य नागरिकों के समान ही जीवन व्यतीत करना चाहिए। इससे संसार को एक शिक्षा भी मिल जायेगी कि जुआ खेलने का क्या दुष्परिणाम होता है।

यदुवंश के वीर सात्यकि ने बलराम के भाषण का जोरदार विरोध किया और कहा कि केवल तर्क के लिये तर्क करने की क्या उपयोगिता है? यदि अन्याय को किसी उपाय से न्याय सिद्ध भी कर दिया जाये तो क्या अन्याय-अन्याय नहीं रहता? युधिष्ठिर ने जुआ क्या विवश होकर ही नहीं खेला था? क्या युधिष्ठिर ने स्वयं जुए का निमंत्रण दिया था? भाग्य की चुनौती को स्वीकार करने और क्षत्रियों की परम्परा को निबाहने के लिए, अपनी हार निश्चित् जानते हुए भी जुआ खेलकर युधिठिर ने कायरता का परिचय दिया या धर्मनिष्ठा का? उस धर्मनिष्ठा का यही पुरस्कार है? जुए के

दुष्परिणाम जगत् के सामने प्रकट करने के लिये, तेरह वर्षों तक झेले गये कष्ट क्या पर्याप्त नहीं है? धर्मनिष्ठ युधिष्ठिर को अब दुर्योधन से अपना राजपाट अवश्य ही वापिस मांगना चाहिए और न मिलने पर युद्ध करके ले लेना चाहिए।

यह ठीक है कि युद्ध एक अनिष्ट है, किन्तु कई बार विष को मारने के लिए विष ही दवाई बन जाती है। सात्यकि के जोशीले धुआंधार भाषण से राजा द्रुपद प्रसन्न हो गये और उन्होंने सात्यकि के प्रस्ताव का पूर्ण समर्थन किया। श्रीकृष्ण जी ने इस संबंध में दुबारा भाषण दिया और अपने भाषण में सात्यकि और द्रुपद का पूरा-पूरा समर्थन किया। भाषणों के उपरांत यह निश्चय किया गया कि शान्ति वार्ता के साथ-साथ युद्ध की तैयारियां भी पूर्णतया करनी चाहिये। क्योंकि यदि शान्ति वार्ता असफल हो गई और युद्ध करना ही पड़ा तो यह सम्भव है कि युद्ध की तैयारी भी अभी से आरम्भ कर देनी चाहिए। यह भी निश्चय किया गया कि दुर्योधन से शान्ति वार्ता का दुष्कर कार्य द्रौपदी के पिता पांचाल नरेश द्रुपद को सौंपा जाये। तत्पश्चात् सभा विसर्जित हो गई।

अध्याय - 9

युद्ध की तैयारियाँ

सभा के विसर्जित हो जाने पर बलराम, श्रीकृष्ण, सात्यकि आदि द्वारका लौट गये। इधर द्रुपद, विराट् और युधिष्ठिर ने शान्ति वार्ता के साथ युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दी। दोनों पक्षों ने अपने-अपने दूत इधर-उधर दौड़ाने आरम्भ कर दिये। अतः राजगुरु धौम्य शांति दूत बन कर हस्तिनापुर रवाना हो गये। वहाँ पहुँचकर राजगुरु धौम्य ने धृतराष्ट्र से कहा–

महाराज! पांडवों ने 13 वर्ष का बनवास और अज्ञातवास पूरा कर लिया है। इसलिये आप उन्हें सम्मान सहित उनका राज्य लौटा दें। दुर्योधन ने यदि दोबारा कोई बेईमानी की तो फिर इस समस्या के हल के लिए भयानक युद्ध होगा और आप तो जानते ही हैं कि पाण्डव अजेय हैं। इसलिए उन्हें जीतना कौरवों के लिए असम्भव होगा और इस प्रकार कुरुवंश का विध्वंस होने से कोई नहीं रोक पाएगा।

भीष्म ने पुरोहित की बात का समर्थन किया, किन्तु कर्ण को यह स्वीकार न हुआ। वह क्रोध में बोला–

पाण्डव विराट और द्रुपद की छोटी-छोटी सेनाओं के बल पर ही कूद रहे हैं। मैं अकेला ही उन्हें काफी हूँ। दुर्योधन तो उन्हें तिलभर भूमि भी युद्ध के बिना नहीं देगा।

इस पर धृतराष्ट्र ने कर्ण को धमकाया और पुरोहित को समझाकर वापिस भेज दिया और कहा कि तुमने तो हमारे कल्याण की ही बात की है। मैं पाण्डवों के पास संजय को भेजूँगा। इतनी बात से ही यह समझ लिया गया कि युद्ध अवश्यम्भावी है। बस दोनों ओर से युद्ध की तैयारी होने लगी। पाण्डवों की युद्ध की तैयारी इतनी थी, जितनी कौरवों की। क्योंकि दुर्योधन के सामने तो शुरू से ही यह स्पष्ट था कि पाण्डवों को आधा राज्य तो क्या, थोड़ी सी भी भूमि नहीं देनी है।

दुर्योधन भली भाँति जानता था कि श्रीकृष्ण जिसका साथ देंगे, उसी का पलड़ा भारी होगा और यह भी जानता था कि श्रीकृष्ण की पाण्डवों के प्रति

पूर्ण सहानुभूति है, फिर भी उसने श्रीकृष्ण से मिलकर उन्हें अपनी ओर से लड़ने का प्रयास करने की बात मन में सोची और द्वारका की ओर चल दिया। पाण्डव समझते थे कि युद्ध में भी श्रीकृष्ण हमारा ही साथ देंगे, तथापि उनकी स्वीकृति प्राप्त करना उत्तम समझा और स्वीकृति लेने के लिए अर्जुन को श्रीकृष्ण के पास भेज दिया। संयोगवश दुर्योधन और अर्जुन एक साथ द्वारका पहुँचे और एक साथ ही दोनों श्रीकृष्ण के भवन में गये। उन्हें बताया गया कि श्रीकृष्ण इस समय आराम कर रहे हैं तो दोनों शयनकक्ष में चले गये। श्रीकृष्ण से दोनों का ही निकट का सम्बन्ध था इसलिये उन्हें रोकता कौन। शयन कक्ष में दुर्योधन ने पहले प्रवेश किया और अर्जुन ने बाद में। दुर्योधन को अपने राज्य का गर्व था अतः वह श्रीकृष्ण के सिरहाने बड़ी शान से जा बैठा और अर्जुन श्रीकृष्ण का सम्मान करता था। अतः वह अत्यन्त विनीत भाव से उनके पैरों की ओर खड़ा हो गया।

श्रीकृष्ण की नींद खुली तो उन्होंने सामने खड़े अर्जुन को पहले देखा और उससे कुशल मंगल पूछा। श्रीकृष्ण को जब कुछ आभास हुआ कि मेरे पीछे भी कोई बैठा है तो उन्होंने दृष्टि घुमाकर देखा तो दुर्योधन से भी कुशल मंगल पूछा। अर्जुन के कुछ कहने से पहले ही दुर्योधन ने कहना शुरू कर दिया—द्वारकानाथ ! कौरव और पाण्डव दोनों के साथ आपका पुराना सम्बन्ध और दोनों के प्रति आपका मित्रभाव एक समान ही है, फिर भी प्राचीन प्रथा का सम्मान करते हुए जो आप के पास पहले आया, उसका आप पर विशेषाधिकार है। आपके शयन कक्ष में पहले मैंने प्रवेश किया है। अतः मुझे पूर्ण विश्वास है नियमानुसार आप मेरे ही साथ रहेंगे। यह तो आप समझते हैं कि कौरवों और पाण्डवों में युद्ध अटल है। युद्ध में मैं आपका सहयोग पाने के लिए ही आया हूँ।

दुर्योधन द्वारा अपने आने का उद्देश्य कह चुकने पर श्रीकृष्ण बोले—सम्भव है कि शयन कक्ष में प्रवेश तुम्हीं ने किया हो, किन्तु नींद खुलने पर मेरी दृष्टि प्रथम अर्जुन पर ही पड़ी थी। मुझे तो उसी को प्रथम मानना चाहिये। तुम्हारा यह कथन सत्य है कि कौरवों और पाण्डवों के प्रति मेरा समान कर्त्तव्य है। मुझे दोनों की ही समान रूप से सहायता करनी चाहिये। परन्तु पहला अधिकार मुझे अर्जुन का ही मानना चाहिये। एक तो मेरी दृष्टि पहले उस पर पड़ी और फिर वह आयु में भी मुझ से छोटा है। प्राचीन प्रथा यह भी तो है कि

जो छोटा हो, वह पहले। इतना कहते ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन की ओर देखा और कहा—अर्जुन! भली भाँति सोचकर उत्तर देना। युद्ध में मैं उपस्थित तो रहूँगा। किन्तु लड़ूँगा नहीं और न ही मैं कोई हथियार उठाऊँगा। तुम या तो मुझे ले लो, और या मेरी सारी सेना। अर्जुन ने निःशंक होकर उत्तर दिया—भगवन्, मुझे इससे कोई मतलब नहीं कि रणभूमि में आप हथियार उठायेंगे या नहीं। मैं तो आप ही को प्राप्त करना चाहता हूँ। अर्जुन के इस उत्तर से श्रीकृष्ण आश्चर्यचकित हो गये। इस प्रकार अर्जुन को मिलने पर दुर्योधन यही सोचकर हाथ मल रहा था कि मक्खन-मक्खन तो अर्जुन ले जायेगा और छाछ मेरे पल्ले पड़ेगी। किन्तु हुआ क्या? अर्जुन ने मानो स्वयं छाछ स्वीकार करके मक्खन दुर्योधन के लिए छोड़ दिया। कहाँ निहत्थे श्रीकृष्ण और कहाँ लाखों वीरों की सशस्त्र सेना पाकर और निहत्थे श्रीकृष्ण को खोकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ।

दुर्योधन अर्जुन की मूर्खता पर मन ही मन हँस रहा था। उसने जब श्रीकृष्ण से विदा मांगी तो श्री कृष्ण अपने मित्र अर्जुन से पूछ ही बैठे कि अर्जुन! तुमने क्या सोचकर मुझे मांगा? अर्जुन ने उत्तर दिया कि भगवन्! मुझ में इतनी शक्ति है कि मैं अकेला ही इन कौरवों को हरा दूँ और आप में भी इतनी शक्ति है कि आप कौरवों को उनके साथियों सहित नष्ट कर सकते हैं। यह भी मानता हूँ कि आप युद्ध नहीं करेंगे और न ही हथियार उठायेंगे। आप मेरे रथ का संचालन तो करेंगे! इससे क्या मेरी शक्ति दुगुनी नहीं हो जाएगी। युद्ध भूमि में क्या रथ-संचालन का कार्य कम महत्वपूर्ण है। मेरी तो न जाने कब से यही इच्छा थी कि युद्ध में आप मेरा रथ हांके जो आज आप की कृपा से पूरी हो गई।

1. शल्य कौरवों के पक्ष में

नकुल और सहदेव की माता माद्री के भाई का नाम शल्य था। वह पाण्डवों की सहायता करने के विचार से अपनी विशाल सेना लेकर उपलव्य नगर की ओर चल पड़ा। पाण्डवों की सहायतार्थ आती शल्य की सेना को दुर्योधन ने एक चाल चलकर अपने पक्ष में कर लिया। जाते हुए राजा शल्य ने जहाँ भी अपना पड़ाव डाला, वहीं उसे स्वागत करने वाले निपुण कर्मचारी मिले। शल्य ने समझा था कि वे स्वागतकर्ता पाण्डवों द्वारा नियुक्त हैं, वस्तुतः

वे दुर्योधन के कर्मचारी थे। पाण्डवों ने यह समझकर कि ये मामा तो घर के ही व्यक्ति हैं उनकी ओर विशेष ध्यान न दिया। वे तो अन्य राजाओं को ही प्रसन्न करने में लगे रहे। कर्मचारियों के सेवाभाव से प्रसन्न हो शल्य बोल उठा कि मैं ऐसे कुशल कर्मचारियों को कुछ पुरस्कार देना चाहता हूँ। इतना सुनते ही दुर्योधन हाथ जोड़कर शल्य के सामने खड़ा हो गया बोला कि कौरव भी तो आपके भानजे हैं। मैं तो केवल एक पुरस्कार आप से चाहता हूँ कि आप युद्ध में पाण्डवों की ओर से न लड़ें।

यह सुन शल्य चकित रह गया और अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के विचार से उसने दुर्योधन को स्वीकृति दे दी। शल्य बड़ा बलवान् था और रथ चलाने में श्रीकृष्ण से किसी भी प्रकार से कम नहीं था। एक बार वह युधिष्ठिर से मिलने विराट् नगर भी गया। शल्य द्वारा दुर्योधन को सहायता का वचन देने की बात युधिष्ठिर को ज्ञात हो गई तो उन्होंने शल्य से कहा कि आपने जो वचन दे दिया है उसे अवश्य पूरा करें। युद्ध में आप कौरवों की ओर रहें। परन्तु एक काम हमारा भी करना, वह यह कि जब आप युद्ध में कर्ण के सारथी बनेंगे तो उस समय आप उसके बल की निन्दा कर उसका उत्साह कम करते रहना। शल्य ने यह बात स्वीकार कर ली। युधिष्ठिर से क्षमा याचना करके शल्य दुर्योधन से मिला।

धृतराष्ट्र की आज्ञा से संजय उपलव्य नगर में आये और पाण्डवों से कहने लगे कि युद्ध न होने में ही कौरवों का कल्याण है। यदि युद्ध हुआ तो दोनों ओर के कुटुम्बों का नाश होगा और कोई भी सुख से राज्य का उपयोग न कर सकेगा। इसलिए शान्ति ही अच्छी है। संजय की बात से युधिष्ठिर बोले कि हम तो शान्ति ही चाहते हैं, फिर हमसे युद्ध का भय कैसे हुआ? संसार में ऐसा कौन मूर्ख है जो शान्ति छोड़कर युद्ध की इच्छा करे। व्यर्थ ही कौन अग्नि से खेलना चाहता है? हम तो 13 वर्षों तक वनों में कष्ट भोगकर अब अपना राज्य माँग रहे है, इसमें हम क्या अन्याय कर रहे हैं।

दुर्योधन ने हमारे साथ इतने भीषण अत्याचार किये हैं, फिर भी हम चुप हैं। आप यह बात अच्छी प्रकार समझ लीजिए कि हम इसलिए चुप नहीं कि हम कमजोर हैं, हमारा बल तो सभी जानते हैं। हम तो इसलिए ही चुप हैं कि

हम शान्ति चाहते हैं। यदि धृतराष्ट्र भी शान्ति चाहते हैं तो उनसे कहना कि हम भी शान्ति चाहते हैं। हम पहले के समान ही व्यवहार करेंगे। हम इन्द्रप्रस्थ में राज्य करेंगे और दुर्योधन हस्तिनापुर में। युधिष्ठिर का शान्ति वचन सुनकर संजय ने फिर कहा कि यदि दुर्योधन बिना युद्ध किए राज्य न दे, तो आप किसी अन्य देश में अपनी जीविका का प्रबन्ध कर लीजिए। आप धर्म का पक्ष लेकर सदा सुखी रहेंगे। कितने राजा मर गये, पृथ्वी को कोई भी अपने साथ नहीं ले गया। युद्ध से किसी का कल्याण नहीं होगा।

संजय की बात सुनकर युधिष्ठिर बोले—हे संजय! भाई आप हमारी बात को पाप बताते हो तो आओ, धर्म और राजनीति जानने वाले श्रीकृष्ण से सलाह लें। जो उनकी सम्मति हो, वही किया जाये। दोनों ने श्रीकृष्ण के पास जाकर इस विषय में उनकी सलाह माँगी। श्रीकृष्ण ने अपनी सलाह देते हुए कहा कि— संजय! दुर्योधन ने पाण्डवों को बहुत कष्ट दिये हैं। उनका धन उसने अधर्म से छीन लिया है। अब उस धन को अधर्म के हाथ से छीनना ही पाण्डवों का धर्म है। पाण्डव तो सन्धि और विग्रह दोनों के लिए ही तैयार हैं। दुर्योधन को जो अच्छा लगे सो करे। श्रीकृष्ण की बात सुनकर संजय हस्तिनापुर चले गये। दुर्योधन का घमण्ड अपनी राज्य, सत्ता और सेना को देखकर पहले से ही बढ़ा हुआ था। परन्तु अब पाण्डवों से संधि प्रस्तावों के कारण और भी बढ़ गया। उसने समझा कि पाण्डव हमारी 11 अक्षौहिणी सेना को देखकर घबरा उठे हैं और इसलिए बार-बार सन्धि का प्रस्ताव लेकर आते हैं। गतिरोध यहाँ तक बढ़ गया कि सभी राजाओं ने कौरव पाण्डवों के मध्य सन्धि को असम्भव मान लिया और कहा कि अब तो युद्ध बिना छुटकारा नहीं।

2. श्रीकृष्ण का शान्ति दूत बनना

दुर्योधन के मन को युद्ध से रोकने के लिए श्रीकृष्ण कौरवों के पास जाकर उन्हें समझाने के लिए तैयार हुए। युधिष्ठिर ने कहा कि वहाँ जाने से दुर्योधन आपका और हमारा अपमान करेगा। इसलिए वहाँ नहीं जाना चाहिए। श्रीकृष्ण कहने लगे कि संसार के कल्याण के लिए मुझे अपने अपमान का कुछ विचार नहीं है। इतना कह कर कौरवों के पास हस्तिनापुर

चले गये। पहले वे धृतराष्ट्र से मिले। फिर विदुर और गान्धारी से मिले। उसके बाद उन्होंने दुर्योधन से भेंट की। उन्होंने विदुर के घर भी भोजन किया। सभा के समय दुर्योधन और शकुनि श्रीकृष्ण को बुलाने विदुर के घर गए और उन्हें सम्मानपूर्वक बुला लाये। सभा में बड़े-बड़े विद्वान, पंडित, राजनीतिज्ञ, राजा महाराजा, ऋषि मुनि आदि एकत्र थे। श्रीकृष्ण ने सारे स्थित वर्ग को सम्बोधित करके कहा कि हम कौरवों और पाण्डवों का झगड़ा मिटाने आये हैं। परस्पर की फूट से कैसे-कैसे अनर्थ हो जाते हैं। यह बात उन्होंने उदाहरण दे देकर अच्छी प्रकार समझाई। अन्त में श्रीकृष्ण ने उन्हें यह भी कहा कि यदि तुम पाण्डवों को आधा राज्य नहीं देना चाहते तो केवल निम्नलिखित 5 गाँव ही दे दो—(1) इन्द्रप्रस्थ, (2) वृकप्रस्थ, (3) वारणावत, (4) माकदी, (5) कोई अन्य ग्राम। वे धर्मात्मा तो इन्हीं से सन्तुष्ट हो जायेंगे। ऋषि मुनियों ने भी इस बात का समर्थन किया। धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण जी की बात ही स्वीकार की। किन्तु यह भी कहा कि झगड़ा मिटाना न मिटाना मेरे हाथ में नहीं है। दुर्योधन हिताहित की ओर ध्यान नहीं देता। धृतराष्ट्र ने भी श्रीकृष्ण की बात सुनकर भीष्म, विदुर आदि को दुर्योधन के पास जाकर समझाने के लिए भेजा। श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र को सम्बोधित करके कहा—

इस समय भारतवर्ष में आपका कुल श्रेष्ठ है। इसमें विद्या है, शील है, दयालुता है, सरलता है, सत्य है। वृद्ध होने से इस कुल के आधार आप हैं। परन्तु आपकी सन्तान बिगड़ रही है। उन्होंने धर्म, अर्थ दोनों छोड़ रखे हैं। मर्यादा में न रहकर वे अपने भाइयों से ही क्रूरता का व्यवहार कर रहे हैं। इसका परिणाम वह घोर आपत्ति है जो इस कुल पर आने वाली है। यदि इसका प्रतिवाद न हुआ तो संसार का क्षय हो जाएगा। आप चाहें तो इसे रोक सकते हैं। इस समय भारत का भाग्य एक आपके अधीन है, दूसरे मेरे। आप कौरवों को रोकिये, मैं पाण्डवों को रोक दूँगा। यदि आज आप पाण्डवों को अपने पक्ष में कर लें तो संसार में आपको जीतने वाला कोई न रहेगा। पाण्डव बड़ी शक्ति हैं और वह शक्ति आपकी हो सकती है। और जो युद्ध हो ही गया तो राजा सभी देशों के आए ही हुए हैं। वे लड़ेंगे और सारी प्रजाओं का नाश कर देंगे। महाराज! इन निरपराध प्रजाओं का वास्ता! इन्हें बचाइये! विमल आचार के निष्कलंक आर्य लोग आपस में लड़-लड़कर मर जाएँगे। इन्हें

बचाइए! कौरवों और पाण्डवों में सन्धि हो जाए तो सभी राजा लोग इकट्ठे खा-पी तथा मंगल मनाकर अपनी-अपनी राजधानियों को लौट जाएँ। पाण्डव तो बचपन से ही आपके पास पले हैं। वही वात्सल्य दृष्टि उनमें फिर से रखिये।

पाण्डवों ने आपको अभिवादन कर यह कहा–

हमने द्यूत की शर्त पूरी कर दी। बारह वर्ष बनवास ओर एक वर्ष अज्ञातवास का घोर व्रत पूरा कर दिया। अब आपको अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहिए। हमारी आपमें पितृ-बुद्धि है। आप हमें पुत्रबुद्धि रखिये।' आपकी सभा में कई वृद्ध आप्त पुरुष विद्यमान हैं। उनके रहते यहाँ सत्य का लोप नहीं हो सकता। यदि मेरा विचार धर्म-अर्थ का विरोधी नहीं तो आप इसका अनुसरण कीजिये। युधिष्ठिर के धैर्य को देखिये कि प्राप्त किये साम्राज्य को, एक बार स्वीकार किये नियम के लिए झट त्याग दिया। द्रौपदी के अपमान को सह गया। आप अब उनसे वह व्यवहार कीजिये जो क्षत्रियों की आन के अनुकूल हो। मृत्यु के मुख में दौड़ी जा रही प्रजा की रक्षा आपके हाथ में है।

दुर्योधन ने क्रोधित होकर कहा–

मेरे जीते जी पाण्डव कदापि राज्य नहीं पा सकते। यहाँ तक कि सूई की नोक भर भी भूमि मैं पाण्डवों को नहीं दूँगा। –उद्योग पर्व

वह पुनः बोला –

क्यों न हम कृष्ण को पकड़कर कैद में डाल दें। कृष्ण के बिना पांडव श्रीहीन हो जाएंगे। हो सकता है कि वे इतने बौखला जाएं कि युद्ध का विचार ही छोड़ दें। तब हमें युद्ध भी नहीं करना पड़ेगा और पूरा राज्य हमारा हो जाएगा।

श्रीकृष्ण अपना पराक्रम दिखाकर वहाँ से विदा हो गये। ठीक है, कोई कितना ही उपदेश करे किन्तु दुर्जनों का स्वभाव बदला नहीं करता और साँप को दूध पिलाओ तो उसका विष और अधिक बढ़ जाता है। धृतराष्ट्र, दुर्योधन के व्यवहार से बहुत व्याकुल हो गये और विदुर जी को बुला कर दुर्योधन को बहुत महत्वपूर्ण उपदेश दिया जो 'विदुरनीति' के नाम से पुकारा जाता है। भीष्म, द्रोण आदि धर्मात्मा मन से धर्मात्मा पाण्डवों का ही कल्याण चाहते थे, किन्तु उन्होंने कौरवों का नमक खाया था, इसलिये युद्ध में उन्होंने कौरवों का पक्ष लिया। पुरुष धन का दास होता है, धन किसी का दास नहीं।

3. श्रीकृष्ण और कुन्ती द्वारा कर्ण को समझाना

जब श्रीकृष्ण हस्तिनापुर से विराट् नगर जा रहे थे, तब मार्ग में उन्हें कर्ण मिला। श्रीकृष्ण ने उससे कहा कि—कर्ण, तुम तो धर्म को अच्छी प्रकार जानने वाले हो फिर पापी दुर्योधन का साथ क्यों देते हो? तुम कुन्ती के सबसे ज्येष्ठ पुत्र हो, तुम हमारे साथ चलो। इस पर कर्ण बोला—हे श्रीकृष्ण, आप हमारे कल्याण की बात कहते हो, पाण्डव वास्तव में बड़े सज्जन और धर्मात्मा हैं, हमारे भाई भी हैं। परन्तु मैं विवश हूँ क्या करूँ? दुर्योधन ने मुझ पर बड़े उपकार किये हैं, उसकी बड़ी कृपा है। इसके पश्चात् एक दिन माता कुन्ती कर्ण के पास जाकर बोली—कर्ण! मैं तुम्हारी माता हूँ। युधिष्ठिर और तुम भाई-भाई हो। तुमको अपने भाइयों का ही पक्ष लेना चाहिये। कर्ण ने कुछ झुंझलाकर उत्तर दिया—तुमने तो मुझे पैदा होते ही फेंक दिया था अतिरथ नामक सारथी ने मेरा पालन-पोषण किया है और दुर्योधन ने मुझे अंगदेश का राजा बनाया है। इसीलिये मैं दुर्योधन का ही पक्ष लेता रहा हूँ। अब युद्ध होने पर भी मैं यदि उन्हें छोड़ दूँ तो लोग मुझे कृतघ्न ही तो कहेंगे। तुम मेरी माता हो, इसलिये तुम्हारे कहने से मैं इतना तो कर सकता हूँ कि मैं युद्ध में अर्जुन के सिवाय और किसी पाण्डव को नहीं मारूँगा। कुन्ती समझती कि युद्ध तो अवश्यम्भावी है, इसलिये मैं तुम से फिर यही कहती हूँ कि, तुम शेष दूसरे भाइयों का ध्यान अवश्य रखना। परमात्मा तुम्हारा भला करे। इसके पश्चात् कर्ण ने कुन्ती को प्रणाम किया और माता कुन्ती वहाँ से चली गई।

4. युद्ध के लिए सेनाओं का जमाव

धृतराष्ट्र को शान्ति का संदेश देने के बाद श्रीकृष्ण ने विराट् नगर जाकर युधिष्ठिर को कौरवों की सभा का सब वृतान्त विस्तारपूर्वक समझा दिया। उन्होंने कहा कि मैंने दुर्योधन को बहुत समझाया, परन्तु वह माना ही नहीं। वह तो अपने हठ पर ही अड़ा है। अब युद्ध ही एकमात्र उपाय रह गया है। कौरव अपनी सेनाएं लेकर कुरुक्षेत्र के मैदान में जा रहे हैं। अब आप लोगों को भी चलने की तैयारी करनी चाहिये। युधिष्ठिर ने कृष्ण की सम्मति शिरोधार्य करके अपनी सेना के सात सेनापति बनाये—द्रुपद, विराट्, धृष्टद्युमन, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान और भीमसेन, सबका संरक्षक अर्जुन को नियत किया गया। बाजे बजने लगे। वीरों के सिंहनाद से दिशायें गूँजने लगीं। हाथी चिंघाड़ने लगे। घोड़े हिनहिनाने लगे। ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन किया और सेना चल पड़ी। कुरुक्षेत्र में पहुँचकर पाण्डवों की

सेना ने एक समतल स्थान पर अपना शिविर लगाया। पाण्डवों की सेना कुरुक्षेत्र के मैदान में पहुँच गई। यह समाचार दुर्योधन को मिला तो वह भी अपनी सेना लेकर झटपट मैदान में जा डटा। दुर्योधन की सेना के सेनापति थे—कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य, जयद्रथ, सुदक्षिण, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, शकुनि और बाल्हीक। दुर्योधन ने इन सबका संरक्षक भीष्म पितामह को नियुक्त किया।

इन सेनाओं के प्रत्येक सैनिक ने युद्ध आरम्भ करने से पूर्व निम्न शपथ ग्रहण की। सूर्यास्त होते ही प्रतिदिन युद्ध रोक देंगे, रात्रि में कोई किसी पर प्रहार नहीं करेगा और दोनों पक्षों के व्यक्ति आपस में निःशंक होकर मिले-जुलेंगे। अपने से कमजोर के साथ भिड़ना अन्याय समझा जाएगा, समान बलशाली परस्पर द्वन्द्व करेंगे। पैदल-पैदल से, घुड़सवार-घुड़सवार से, हाथी सवार-हाथी सवार से और रथी-रथी से ही भिड़ेगा। जो युद्ध स्थल से बाहर निकल जायेगा, उस पर कोई प्रहार नहीं किया जायेगा। युद्ध स्थल में भी यदि किसी ने लड़ना रोक दिया हो, सिर झुका लिया हो, या भागना आरम्भ कर दिया हो तो उससे युद्ध नहीं किया जायेगा। जो निहत्था हो, कवच रहित हो, उस पर आक्रमण नहीं किया जायेगा। जब दो योद्धा आपस में लड़ रहें हो, तब उन्हें सावधान किये बिना, सम्भलने का अवसर दिये बिना, कोई तीसरा योद्धा उन पर शस्त्र प्रहार नहीं करेगा। सारथी, अनुचर, शंखनादक और हथियारों का परिवहन करने वालों पर कदापि शस्त्र प्रयोग नहीं करेगा, कोई वीर किसी की जंघा से नीचे प्रहार नहीं करेगा। प्रातःकाल होते ही नित्य कर्म से निवृत हो, भोजन करके, दोनों सेनाएं मैदान में आमने सामने आ खड़ी हुई। युद्ध के बाजे बजने लगे, नगाड़ों के शब्द से आकाश गूंज उठा, वीरों की भुजायें फड़कने लगीं और शंखों की ध्वनियों से गगन गूंज उठा। दोनों ओर से युद्ध की पूरी तैयारी हो गई तब महर्षि वेदव्यास ने धृतराष्ट्र से जाकर कहा—

यह होनी है, अवश्य होगी। इस सर्वनाश को कोई भी रोक नहीं सकेगा। अंत में विजय धर्म की होगी।

अध्याय -10

गीतोपदेश

कौरवों और पाण्डवों की सेनाएं कुरुक्षेत्र के मैदान में आ गईं। कौरवों की सेना के सेनापति भीष्मपितामह थे। उन्होंने अपनी सेना का एक ऐसा व्यूह बनाया कि जिसमें प्रवेश कर युद्ध करना शत्रुओं के लिए भारी समस्या थी। यह देख युधिष्ठिर की अनुमति से अर्जुन ने अपनी सेना का सूची व्यूह बनाया। सबसे आगे का मोर्चा महाबली भीम ने सम्भाला। अब दोनों सेनाएं लड़ने के लिये बिल्कुल तैयार हो गई और स्थिति ऐसी पैदा हो गई कि अब आक्रमण हुआ। तभी अर्जुन ने अपने सारथी श्रीकृष्ण से कहा कि भगवन्! मेरा रथ दोनों सेनाओं के मध्य में ले जाकर ऐसी जगह खड़ा कीजिए जहाँ से मैं दोनों सेनाओं को अच्छी प्रकार से देख सकूँ। अर्जुन की इच्छा के अनुसार श्रीकृष्ण ने उसका रथ दोनों सेनाओं के मध्य में ले जाकर खड़ा कर दिया। दोनों ओर से शंखों की ध्वनि हुई। इसके उपरांत अर्जुन ने चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई, तो सेनाओं में पिता के भाइयों को, पितामहों को, आचार्यों को, मामों को, भाइयों को, पुत्रों को, पौत्रों को, ससुरों को और सुहृदों को देखा। उनमें भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण आदि को भी युद्ध के लिए तैयार खड़ा हुआ देखा। उन्हें देखकर उसके मन में मोह उत्पन्न हो गया और वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसके हाथ में धनुषबाण छूट गये और वह रथ से उतरकर नीचे खड़ा हो गया।

फिर अर्जुन श्रीकृष्ण जी से कहने लगा कि हे श्रीकृष्ण! युद्ध की इच्छा से खड़े हुए सज्जन समुदाय को देखकर मेरे अंग शिथिल हुए जाते हैं, मुख सूखा जाता है, मेरे शरीर में कंपकंपी हो रही है और भय के कारण मेरे रौंगटे खड़े हो गये हैं। हाथ से गाण्डीव धनुष छूट रहा है, त्वचा जल रही है, मेरा मन भ्रमित हो रहा है, मुझसे तो खड़ा भी नहीं हुआ जा रहा। मुझे युद्ध के लक्षण कुछ बुरे दिख रहे हैं, युद्ध में अपने कुल को मारकर कल्याण नहीं। हे श्रीकृष्ण! मुझे विजय नहीं चाहिये, न मुझे राज्य चाहिये और न किसी सुख की आवश्यकता है। भाइयों को मारकर हम राज्य का क्या करेंगे, सुख

भोगकर क्या लेंगे और जीवित रहकर भी क्या करेंगे। हमें जिनके लिए राज्य, सुख और भोग की आवश्यकता है, वे तो सब अपने धन को छोड़ और प्राण हथेली पर धर यहाँ युद्ध में खड़े हैं।

ये गुरुजन, पितामह, ताऊ, चाचे, मामा, ससुर, पोते, साले, पुत्र व अन्य सब सम्बन्धी यद्यपि मुझे मारने के लिए तैयार हैं, तथापि मैं इन्हें नहीं मारना चाहता। इन्हें मारकर पृथ्वी का राज्य तो क्या? यदि तीनों लोकों का राज्य भी मुझे मिले तो वह भी नहीं चाहिये। धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर भी हमें क्या प्रसन्नता होगी क्योंकि इन्हें मारकर तो पाप ही लगेगा। इसलिए हे श्रीकृष्ण! इन्हें मैं मार नहीं सकता, अपने ही कुटुम्ब को मारकर हम सुखी कैसे रहेंगे? यद्यपि इनका मन तो लोभ के कारण भ्रष्ट हो गया है और ये लोग कुल का नाश करने के दोष को एवं मित्रदोह को पाप नहीं मान रहे हैं। यह तो बड़े आश्चर्य का विषय है कि हम राज्य और सुख के लोभ से अपने कुल को मारने के लिए तैयार हो गये हैं। यदि युद्ध में मुझ निहत्थे को शस्त्रधारी कौरव मार डालें तों वही मेरे लिये ही कल्याणकारी होगा।

इतना कह कर दुःखी अर्जुन रथ के पीछे बैठ गया। इस प्रकार दुःखी होकर रोते हुए अर्जुन को श्रीकृष्ण समझाने लगे कि हे अर्जुन! इस विषम अवस्था में तुम को यह अज्ञान क्यों प्राप्त हुआ है। यह कार्य श्रेष्ठ पुरुषों ने कभी नहीं किया और यह कार्य यश देने वाला भी नहीं है। अर्जुन! नपुंसकता मत दिखा यह तेरे लिये शोभा नहीं देती। हृदय की निर्बलता को छोड़कर खड़ा हो जा। अर्जुन ने फिर पूछा कि– युद्ध में मैं भीष्म और द्रोण के साथ युद्ध कैसे करूंगा। ये दोनों तो हमारे गुरु हैं। मैं भले ही भीख मांगकर गुजारा कर लूंगा। किन्तु इन गुरुजनों को युद्ध में मार नहीं सकता। हमें कर्त्तव्य नहीं सूझता। हमें यह भी नहीं मालूम कि युद्ध में हम जीतेंगे या वे जीतेंगे। अतः आप मुझे धर्मोपदेश दीजिए, मैं आपका शिष्य हूँ और आपकी शरण में आया हूँ।

तत्पश्चात् शोकायुक्त अर्जुन को श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए ये वचन कहे कि– अर्जुन! तू बात तो पण्डितों जैसी करता है और जिनका शोक नहीं करना चाहिए उनके लिए शोक करता है। क्योंकि पण्डित तो मृतकों और

जीवितों के लिए भी शोक नहीं किया करते । आत्मा तो नित्य है, इसलिए शोक करना उपयुक्त नहीं । बात ऐसी नहीं कि मैं किसी काल में नहीं था अथवा तू नहीं था अथवा ये राजा लोग भी नहीं थे और न ही ऐसी बात है कि आगे भी नहीं रहेंगे । देहधारी के इस देह में जैसे कुमार, युवा और वृद्धावस्था होती है उसी प्रकार दूसरे शरीर की भी प्राप्ति होती है । इसलिये मनुष्य को इस विषय में मोह नहीं करना चाहिए । सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख को देने वाले इन्द्रियों और विषयों के संयोग तो क्षणभंगुर हैं, इसलिए तू उन्हें सहन कर । जिसको इन्द्रियों के विषय व्याकुल नहीं कर सकते वह मोक्ष के योग्य होता है । जो वस्तु असत् है उसका अस्तित्व नहीं होता और जो सत् है उसका अभाव नहीं होता ।

इस नाशरहित आत्मा के ये सब शरीर नाशवान् हैं, इसलिए तू युद्ध कर । यह आत्मा न मरती है और न ही मारी जाती है । क्योंकि यह आत्मा नित्य है, शरीर का नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता । जो इस आत्मा को नित्य जानता है वह पुरुष कैसे किसी को मार सकता है । जैसे व्यक्ति पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्रों को ग्रहण करता है उसी प्रकार आत्मा भी पुराने शरीरों को त्याग कर नये शरीरों को प्राप्त होता है । हे अर्जुन ! इस आत्मा को शस्त्र आदि नहीं काट सकते, इसे आग नहीं जला सकती, इसे जल गीला नहीं कर सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकती । क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य है । यह आत्मा निस्संदेह सनातन है । इसलिये तुझे शोक नहीं करना चाहिए, क्योंकि जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित् है और जो मर जाता है उसका पुनः जन्म निश्चित् ही है । सबके शरीरों में स्थित यह आत्मा अमर है ।

अध्याय - 11

महाभारत का युद्ध

महाभारत का युद्ध18 दिन तक चला और इसका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है ।

जब दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध करने को तैयार हो रही थी, उसी समय एक घटना हुई जिसने दोनों पक्षों को आश्चर्य में डाल दिया । वह यह कि महात्मा युधिष्ठिर अपने रथ से उतर कर पैदल ही कौरवों की सेना की ओर चल पड़े । यह देख पाण्डव घबराये कि शत्रुओं की सेना में इस प्रकार अकेले जाना ठीक नहीं है और उधर कौरव प्रसन्न हुए कि देखो युधिष्ठिर हमारी सेना देखकर डर गये हैं । उस समय दुर्योधन ने फिर यही कहा कि मैं तो युद्ध के बिना तिल भर भूमि भी नहीं दूँगा । किन्तु धर्मराज युधिष्ठिर ने क्या किया ? वे भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, शल्य आदि गुरुजन के पास गये, उनके चरणों में प्रणाम किया और एक-एक करके सबसे युद्ध करने की आज्ञा मांगी । सब गुरुजन उनके इस नम्रता के व्यवहार से प्रसन्न हुए और उन्होंने युधिष्ठिर को आशीर्वाद दिया कि युद्ध में तुम्हारी विजय अवश्यम्भावी है ।

धर्मराज युधिष्ठिर अपनी सेना में वापिस लौट आये । युधिष्ठिर ने युद्ध आरम्भ होने से पूर्व धर्म की महिमा एवं पाप की दुर्गति पर प्रकाश डालते हुए कहा—अब समय है जो धर्म की शरण में आना चाहते हैं वे हमारे दल में आ जायें, पीछे से पछताने वालों को हम भी सहायता नहीं दे सकेंगे । यह सुन और अपने पक्ष को पापयुक्त देख दुर्योधन के भाई युयुत्सु ने कहा—महाराज यदि मुझे स्वीकार करें तो मैं पापियों से लड़ने को तैयार हूँ । यह सुनते ही युधिष्ठिर ने बड़े प्रेम से कहा—आइये ! आप श्रीकृष्ण एवं हम पाँचों पाण्डव कौरवों से युद्ध करेंगे । निश्चय ही उन सब का नाश होने पर धृतराष्ट्र की सेवा करने वाले तथा पीछे से राजकाज करने वाले आप ही होंगे । इस प्रकार युयुत्सु पाण्डवों से जा मिले । युद्ध आरम्भ होने की सूचना देने के लिये, दोनों ही पक्ष, जोर-जोर से शंख, तुरही, नगाड़े आदि बजाने लगे । इनके शोर से चारों दिशायें फटने लगी ।

1. युद्ध का पहला दिन (भीष्मपितामह)

युद्ध छिड़ते ही पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न ने आचार्य द्रोण पर शक्तिशाली आक्रमण किया, जिसे रोकने के लिए द्रोण को भीषण युद्ध करना पड़ा। कौरवों के सेनापति भीष्मपितामह ने अर्जुन के साथ भयंकर युद्ध आरम्भ कर दिया। अर्जुन का रथ श्रीकृष्ण बड़ी योग्यता से हांक रहे थे, इसलिए अर्जुन को भीष्म से टक्कर लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई। भीमसेन दुर्योधन से भिड़ा। युधिष्ठिर मामा शल्य की बाण वर्षा का उत्तर भीष्ण बाण वर्षा करके दे रहे थे। युधिष्ठिर ने उस दिन इतने कौशल के साथ युद्ध किया कि विपक्षी आश्चर्यचकित रह गये। युद्ध में अनेक कौरव वीरों ने अर्जुन को घेर रखा था। भीष्म के रथ को रोकने की शक्ति मानो किसी में नहीं थी। यह देख वीर बालक अभिमन्यु की भुजायें फड़कने लगीं। उस बालक ने आगे बढ़कर भीष्म को ऐसी चुनौती दी कि दूर-दूर तक दोनों पक्षों की सेनायें आश्चर्य में पड़ गई।

स्वच्छन्द घूमते भीष्म को अभिमन्यु ने जहाँ का तहाँ रोक दिया। भीष्म के सब बाण अभिमन्यु के बाणों से कट कट कर गिरने लगे। जब उसने भीष्म के रथ की ध्वजा काटकर गिराई तो भीम प्रसन्न हो सिंह गर्जना करने लगा। युद्ध में ही विराट् का पुत्र मत्स्य देश का राजकुमार उत्तर शल्य के बाणों का शिकार हो गया। उत्तर के भाई श्वेत को क्रोध आ गया। उसने भीष्म पितामह के रथ की ध्वजा दूसरी बार काट डाली, भीष्म ने खींच कर एक ऐसा बाण मारा कि जिससे पराक्रमी राजकुमार श्वेत मारा गया। पहले ही दिन भीष्म के हाथों जो तबाही हुई, उससे पाण्डव भयभीत हो गये। श्रीकृष्ण ने उन्हें किसी प्रकार धीरज बंधाया। उस दिन हार से युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई, सेनापति धृष्टद्युम्न नें समझाकर साहस दिलाया।

2. युद्ध का दूसरा दिन (पाण्डव-विजय)

दूसरे दिन पाण्डव कौरवों की सेना पर हावी होते गये। सारे दिन धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य की नाक में दम किये रखा। इस दिन भी अर्जुन और भीष्म का घमासान युद्ध हुआ। भीम ने भी कौरव सेना का बहुत संहार किया। अभिमन्यु ने भी अद्‌भुत पराक्रम दिखाया। दुर्योधन अनेक वीरों को

लेकर अभिमन्यु को घेरकर मारने लगे, अभिमन्यु तनिक भी भयभीत न हुआ और निरन्तर युद्ध करता रहा। अर्जुन ने देखा कि अभिमन्यु शत्रुओं से घिरा हुआ है तो उसे बड़ा क्रोध आया और उसने कौरव सेना में प्रलय मचा दी। कौरव सेना में हाहाकार मच गया और वह भागने लगी।

3. युद्ध का तीसरा दिन (भीष्म और अर्जुन का भयंकर युद्ध)

तीसरे दिन कौरवों के सेनापति भीष्म ने अपनी सेनाओं को गरुड़ पक्षी के आकार में खड़ा किया। इसकी रक्षा के लिये दुर्योधन को तैनात किया गया। पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न ने इस गरुड़ व्यूह को तोड़ने के लिए अपनी सेना को चन्द्र व्यूह में खड़ा किया। चन्द्र व्यूह में खड़े पाण्डवों के वीर आज इसी चिन्ता में व्याकुल थे कि पहले दिन हम हारे, दूसरे दिन हमने उन्हें हरा दिया और आज तीसरे दिन देखें कि क्या होता है।

कौरवों का गरुड़ व्यूह पूरी शक्ति के साथ टिड्डी दल की भाँति अर्जुन पर आ टूटा। अर्जुन एक साथ शत्रुओं के बाण काट-काट कर गिराने लगा। सब आश्चर्य में पड़ गये। भीष्म और द्रोण मिलकर युधिष्ठिर पर टूटे। नकुल और सहदेव ने उनकी सहायता की। युधिष्ठिर ने उन दोनों पर काबू पा लिया। भीम आज भी अपना क्रोध दुर्योधन पर निकाल रहा था। भीम का ऐसा आतंक बैठा कि कौरव सेना को मोर्चे पर डटे रहने की भी सुध न रही। जिधर भी भीम दिखाई देता वहाँ ही कौरवों के सैनिक भाग जाते। आज भीम का पुत्र घटोत्कच भी पूरे वेग पर था। उसने तो कई आश्चर्यजनक पराक्रम ऐसे कर दिखाए कि स्वयं उसके पिता भीमसेन का तेज भी उसके सामने फीका पड़ गया।

शकुनि के साथ सात्यकि और अभिमन्यु टक्कर ले रहे थे। जुआरी शकुनि युद्ध कला में भी किसी से कम नहीं था। उसने सात्यकि का रथ पूर्णतः ध्वस्त कर डाला। सात्यकि ने अभिमन्यु के रथ में शरण ली और फिर इन दोनों ने मिलकर शकुनि पर इतना भयानक आक्रमण किया कि उसकी सारी सेना नष्ट हो गई और वह भी अपनी जान बचाने के लिए वहाँ से भाग निकला। दोपहर तक पाण्डवों के अधीन चन्द्रव्यूह ने कौरवों के गरुड़ व्यूह की

वह दशा कर दी कि गरुड़ की स्थिति कौए जैसी भी नहीं रह गई। भीष्म और द्रोणाचार्य ने कुचली हुई सेना को जैसे-तैसे संगठित कर खड़ा कर दिया। भीष्म और द्रोण ने ऐसा भयानक युद्ध किया कि प्रातः जिस प्रकार कौरव सेना भागी थी, अब पाण्डव की सेना पीठ दिखाकर भागने लगी। यह देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ भीष्म की ओर तेजी से बढ़ाया। दोनों में भयानक द्वन्द्व युद्ध होने लगा। दोनों ही एक दूसरे पर बढ़-चढ़कर वार कर रहे थे।

बहुत देर तक दोनों में मुकाबला होता रहा। अर्जुन भीष्म का आदर करता था इसलिए क्रोध से नहीं लड़ रहा था। श्रीकृष्ण ने कई बार उसे सावधान होकर लड़ने के लिए कहा। परन्तु वह उसी प्रकार लड़ता रहा। तब श्रीकृष्ण स्वयं ही सुदर्शन चक्र लेकर भीष्म पितामह की ओर भागे। अर्जुन ने उन्हें रोका और कहा कि अब मैं सावधान होकर लडूँगा। उसके उपरांत दोनों का ऐसा भीष्ण युद्ध हुआ कि अर्जुन ने कौरवों की सेना में हाहाकार मचवा दिया, उसमें भगदड़ मच गई। तीसरे दिन भी पाण्डवों की ही विजय हुई।

4. युद्ध का चौथा दिन (दुर्योधन और भीम का मुकाबला)

अगले दिन भी भीष्म और अर्जुन का भयंकर युद्ध होने लगा। अर्जुन की सहायता के लिए उसका पुत्र वीर अभिमन्यु भी अपना रथ लेकर उसके पास आ गया। दुर्योधन ने अपनी बहुत सी सेना बुलवा कर अर्जुन और अभिमन्यु दोनों को घेर लिया और उधर पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न और शल्य का भी घोर युद्ध हुआ। इस दिन दोनों ओर की सेनाओं में भयंकर मारकाट हुई। अर्जुन का क्रोध साक्षात् यमदूत बनकर कौरवों की सेना पर हावी हो गया। कौरवों की सेना जीतकर भी अब हार कर पीछे हट गई। कौरवों ने अर्जुन का क्रोध उसके पुत्र अभिमन्यु पर निकालना चाहा। इस सुकुमार किन्तु परमवीर बालक को पाँच-पाँच कौरव योद्धाओं ने घेर लिया और वे आचार संहित की पूर्ण अवहेलना करके उस पर पाँच दिशाओं से एक साथ वार करने लगे। अभिमन्यु पाँचों के वेग को दृढ़ता से रोकता रहा। वह अन्यायपूर्ण मोर्चा अर्जुन की दृष्टि से ओझल न रह सका। वह अपने पुत्र की रक्षा के लिए गाण्डीव की टंकार करता हुआ तूफान की तरह आ पहुँचा। पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न ने भी अपनी शक्ति इसी ओर घुमा दी। युद्ध

इतना भयंकर हो उठा कि पाण्डवों के मामा शल्य से न रहा गया। उसने भी अभिमन्यु पर हावी होने में कोई कसर न छोड़ी। परन्तु अभिमन्यु ने भी शल्य की चुनौती स्वीकार करके उस पर ऐसे बाण चलाए कि शल्य की प्राण रक्षा कौरवों के लिए समस्या बन गई।

यह देख दुर्योधन एक जबर्दस्त गज सेना लेकर झपटा और इधर से भीमसेन हुंकार भरकर अपनी सशक्त घातक गदा घुमाता हुआ दुर्योधन के हाथियों पर पिल पड़ा। सजीव पर्वतों के समान हाथी उस पर झपट पड़े। किन्तु गदा के प्रहारों से भीम ने सब को न केवल पीछे हटाया अपितु भयभीत भी कर दिया। भीम ने दुर्योधन के अनेक हाथी उठा उठाकर गाजर मूली की भाँति दूर-दूर तक फेंक दिये। जो हाथी डरे नहीं और सामने डटे रहे उन्हें भीम ने मार-मार कर मार डाला। जो डर गये थे, इतनी तेजी से भागे कि उनके पैरों से स्वयं कौरवों की बहुत सी सेना कुचली गई। भीम द्वारा मारे गये हाथियों की लाशें चारों ओर बिखर गई। अब दुर्योधन में इतना भी साहस नहीं रह गया था कि वह भीमसेन के सामने भी आ सके। उसने दूर से ही भीम पर बाणों की वर्षा करना शुरू कर दिया। कुछ बाण भीम को लगे। उसे क्रोध आ गया और वह दहाड़ उठा।

उसने दुर्योधन के आठ भाइयों को मार डाला और दुर्योधन पर भी ऐसी तेज बाण वर्षा की कि वह भीम को मान गया। फिर अवसर पाकर उसने भीम की छाती में ऐसा बाण मारा कि वह अर्ध-मूर्छित होकर रथ पर बैठ गया। दुर्योधन खुशी से उछल पड़ा। अपने पिता की यह दशा देखकर घटोत्कच को बहुत क्रोध आया। उसने कौरवों पर ऐसा आक्रमण किया कि उन्हें मैदान छोड़कर भागना कठिन हो गया। इस दिन भी विजय पाण्डवों के हाथ लगी। चौथे दिन के युद्ध में कौरवों ने जो जान माल की हानि उठाई और जितने दुर्योधन के भाई एक साथ मौत के घाट उतारे गये—यह समाचार संजय से सुनकर धृतराष्ट्र व्याकुल हो गया। वह समझने लगा कि मेरे सौ पुत्रों में से कदाचित एक को भी पाण्डव जीवति न छोडेंगे। संजय ने धृतराष्ट्र से कहा कि अब तो तीर हाथ से छूट चुका है, युद्ध के जो भी परिणाम होंगे वे भुगतने ही पड़ेंगे। धृतराष्ट्र से संजय ने यह भी कहा कि यह सब आपकी कुनीति का ही

परिणाम है। आपने ही दुष्ट पुत्रों को वश में न रखा और उन्हें मनमानी करने दी। यह सुनकर धृतराष्ट्र रोने लगा।

5. युद्ध का पाँचवां दिन (पाण्डवों से युद्ध में विजय कठिन)

पाँचवे दिन भीमसेन अपनी सेना लेकर पाण्डवों के व्यूह में सबसे आगे खड़ा दिखाई दिया। उसके पीछे सेनापति धृष्टद्युम्न था। शिखण्डी और सात्यकि भी वहीं उपस्थित थे। युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव सबसे पिछली पंक्तियों को संभाल रहे थे। इस दिन युद्ध शुरू होते ही पाण्डवों को कौरवों की सेना पर प्रभावी होते देर न लगी। दुर्योधन ने आचार्य द्रोण के पास जाकर उनसे अत्यंत कठोर वचन कहे। जिनसे द्रोण कौरवों से नाराज हो गये किन्तु यह नाराजगी उन्होंने उतारी पाण्डवों पर। सात्यकि ने द्रोण से जमकर लोहा लिया। यह देखकर भीम भी सात्यकि के साथ जा मिला। फिर क्या था? दोनों ही पक्ष मृत्यु को पुकारने लगे। अब पाण्डवों की ओर से शिखण्डी सामने आया। उसे देख भीष्म पीछे हट गये और बोले कि यह तो जन्म से स्त्री है, इसके मन में स्त्री भाव अब भी विद्यमान है, मैं क्षत्रिय होकर स्त्री पर आक्रमण नहीं कर सकता हूँ। भीष्म जी के पीछे हट जाने पर कौरवों की सेना ढीली पड़ गई। किन्तु आचार्य द्रोण ने शिखण्डी पर भी बाण वर्षा करने में संकोच नहीं किया। शिखण्डी को सामने से हटना पड़ा।

अब तो युद्ध बहुत जोर पकड़ गया। सात्यकि के दसों पुत्रों को भूरिश्रवा ने मार डाला। सात्यकि ने भूरिश्रवा पर इतने वेग से आक्रमण किया कि दोनों के रथ टकराकर चूर-चूर हो गये। अब उन दोनों में ढाल तलवार का युद्ध होने लगा। भूरिश्रवा की बराबरी ढाल तलवार की लड़ाई में बड़े-बड़े भी नहीं कर पाते थे, इसलिए यह सात्यकि के लिये कठिन पड़ा। इतने में भीम ने अपना रथ जबरदस्ती इन दोनों के मध्य में लाकर खड़ा कर दिया और भीम सात्यकि को खींच रथ में बैठाकर भाग चला। भूरिश्रवा ने अपना क्रोध अन्य पाण्डवों पर उतारा। दुर्योधन की आज्ञा से कौरवों ने अर्जुन को घेर लिया। अर्जुन ने अग्नि बाण छोड़कर कौरवों की सेना को भून डाला। पाण्डव सेना अर्जुन की जय जयकार करने लगी।

6. युद्ध का छठा दिन (जले पर नमक)

छठे दिन धृष्टद्युम्न ने पाण्डवों की सेना का मकर व्यूह बनाया और कौरवों के सेनापति भीष्म ने अपनी सेना का क्रीच व्यूह बनाया। व्यूह बनाकर सेनायें युद्ध करने लगी। कल अर्जुन कौरव सेना के लिए महाकाल बना था तो आज भीम ने साक्षात् यमराज का रूप धारण किया। आज उसने दुर्योधन के भाइयों को निशाना बनाया। भीम ने अपने सारथी से कहा कि मेरा रथ शत्रुओं की सेना के मध्य में ले चलो। कोई चिन्ता न करो कि मेरे साथ कोई है भी या नहीं। मैं अकेला ही काफी हूँ। सारथी ने आज्ञा मानी दुर्योधन के भाइयों ने भीम को चारों ओर से घेरकर उस पर विकट बाण वर्षा की। किन्तु भीम को क्या परवाह! भीम की भुजाएं इतने वेग से फड़की कि वह अपने सारथी से बोला कि तुम यहीं रुको, मैं आगे जाकर दुर्योधन के इन शरारती भाइयों को मारकर अभी वापिस आता हूँ। तब तक तुम यहीं रुके रहना। इतना कह फिर भीम अपनी गदा घुमाता हुआ भूमि पर कूद पड़ा। जो भी उसके सामने आया, खुद चकनाचूर हो गया। रथ, हाथी, घोड़े, पैदल, कुछ भी साबुत न बचा। वह निर्विघ्न आगे ही आगे बढ़ता गया।

भीम का रथ खाली देखकर धृतराष्ट्र की चिन्ता बढ़ी और सारथी से उसका हाल पता करके उसकी चिन्ता और भी बढ़ चली। शत्रु सेना में काफी आगे जाने पर धृष्टद्युम्न ने एक अनुपम दृश्य देखा कि दुर्योधन के अनेक भाइयों की लाशों के बीच भीमसेन गौरव से सीना ताने खड़ा है। उसके अंग-अंग में बाण चुभे हुए हैं और वह खून से तर बतर हो रहा है। मांस और खून से सनी गदा उसने अपने कंधे पर रख ली और वह चारों ओर से अनेक रथों से घिरकर जमीन पर खड़ा था। प्रत्येक रथ में दुर्योधन का कोई न कोई भाई बैठा था और वह भीम पर बाण वर्षा कर रहा था। बड़ा भाई दुर्योधन भी उसके आस-पास ही घूम रहा था और अन्य अनेक भाई उसकी रक्षा के लिए सन्नद्ध थे। धृष्टद्युम्न ने रथ तेजी से दौड़ाकर भीम के पास ला खड़ा किया और जबरदस्ती उसे रथ में बैठाकर शत्रु सेना से बाहर निकाल लाया। कौरवों ने इन दोनों को रोकने की भरसक चेष्टा की। परन्तु रोक न सके।

दूसरे मोर्चे पर आचार्य द्रोण अपना पराक्रम दिखा रहे थे। उनका

सारथी मारा गया तो वह स्वयं घोड़ों की रास संभालकर पाण्डव सेना के मध्य घुस गये। पाण्डवों की व्यूह रचना को अस्त-व्यस्त होते देर न लगी और कौरवों का व्यूह तो कभी का भंग हो चुका था। भीष्म और अर्जुन ने भी दोनों सेनाओं का विनाश किया। सारा दिन आपाधापी का युद्ध होता रहा। युद्ध रुकने से पहले जले पर नमक की तरह भीम के बाणों ने दुर्योधन को स्थान-स्थान से छेद डाला। आज पाण्डवों की विजय हुई। भीम के प्रहार से घायल दुर्योधन अपना घाव दिखाकर भीष्म पर बरसने लगा। वह बोला कि मुझे असह्य पीड़ा हो रही है। भीष्म ने उसका घाव देखकर ऐसी दवा लगा दी जिससे शीघ्र ही उसका दर्द जाता रहा। फिर वह भीष्म को कहने लगा कि हमारी पराजय के लिये आपका आलस्य ही कारण है। इससे भीष्म को बड़ा दुःख हुआ। उसने स्पष्ट कह दिया कि आप पाण्डवों के प्रति स्नेह करते हैं। इसलिए ध्यान से नहीं लड़ते अन्यथा आपके होते हुए हमारी यह दशा नहीं हो सकती थी। भीष्म पर दुर्योधन का यह आरोप सर्वथा आधारहीन था। इसलिये उनका दुःखी होना स्वाभाविक ही था उनका हृदय दुर्योधन के वाग्बाणों से बार बार बिंध गया।

7. युद्ध का सातवां दिन (भीम और दुर्योधन के भाई)

आज सातवें दिन युद्ध का बिगुल बजते ही एक साथ अनेक मोर्चे खुल गये। पूर्व की तरह अर्जुन के विरुद्ध भीष्म जी आ डटे, विराट् से द्रोण, धृष्टद्युम्न से दुर्योधन, शिखण्डी से अश्वत्थामा और नकुल सहदेव से उनके मामा शल्य ने टक्कर ली। दुर्योधन के चार भाइयों को भीम ने एक साथ घेरा और उनकी धज्जियाँ उड़ानी शुरू की। उधर भुलायु से युधिष्ठिर और कृपाचार्य से चेकितान युद्ध कर रहे थे। अर्जुन और भीष्म बहुत देर तक आपस में युद्ध करते रहे परन्तु कुछ निर्णय न हो सका। द्रोण ने विराट् का सारथी मार दिया। घोड़े धाराशायी कर दिये और रथ चूर-चूर कर दिया। विराट् के दो पुत्र उत्तर और श्वेत पहले ही युद्ध में मारे जा चुके थे। आज तीसरा पुत्र शंख भी मारा गया। शल्य ने नकुल के सारे घोड़े मार दिये किन्तु सहदेव के एक तीखे बाण ने शल्य को बेहोश करके भूमि पर गिरा दिया।

दुर्योधन के भाइयों की भीम ने बुरी गत बना डाली। भीम के कारण

दुर्योधन के भाई अब 100 से बहुत कम रह गये। अभिमन्यु ने 3 कौरवों को बुरी तरह हरा दिया और उन्हें यह कहकर छोड़ दिया कि तुम्हारी जान तो मेरे ताऊ भीम ही लेंगे। चेकितान और कृपाचार्य को उठाकर शिविर ले जाया गया।

8. युद्ध का आठवाँ दिन (आज या तो मैं नहीं, या वे नहीं)

आठवें दिन कौरवों ने कछुए के आकार वाला कूर्म व्यूह रचा और पाण्डवों ने त्रिशूल के आकार का त्रिशिखर व्यूह बनाया, जिनमें तीन शिखर थे और वे भीमसेन, सात्यकि और युधिष्ठिर ने एक-एक करके एक-एक संभाल लिये। पहले ही आक्रमण में भीमसेन ने दुर्योधन के 8 भाई और मार दिये। इससे दुर्योधन अधिक दुःखी हुआ और सोचने लगा कि क्या हम सभी 100 भाई भीम के ही हाथों मारे जायेंगे। इस दिन दुर्योधन के साथ-साथ अर्जुन को भी बहुत दुःख हुआ। आज अर्जुन का प्रिय पुत्र इरावान युद्ध में मारा गया। अर्जुन का हृदय बहुत व्याकुल हो गया। अर्जुन ने एक नागकन्या उलूपी से विवाह किया था, उसी का पुत्र यह इरावान था। अलम्बुष ने आते ही इरावान को मारकर धाराशायी कर दिया। यह देख भीम के पुत्र घटोत्कच ने ऐसी घनघोर गर्जना की, जैसी अब तक कभी भी सुनाई नहीं पड़ी थी। घटोत्कच ने एक-एक झटके से इतने-इतने वीर मारने आरम्भ किये कि कौरवों की सेना मुंह छिपाकर भागने लगी।

घटोत्कच का क्रोध और भी बढ़ गया और अब उसने अपना निशाना दुर्योधन को ही बना डाला। उसने दुर्योधन पर अपना शक्ति नामक अमोघ हथियार दे मारा। इस समय बंग नरेश ने अपना हाथी बीच में अड़ा दिया। दुर्योधन तो बच गया लेकिन हाथी मारा गया। हाथी को मरता देखकर घटोत्कच ने फिर ऐसी भयंकर गर्जना की कि जिसके सुनने मात्र से ही सैंकड़ों कौरव सैनिक बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़े। घटोत्कच की दहाड़ युधिष्ठिर ने भी सुनी, जिसे सुनकर उन्होंने यह समझा कि अवश्य ही घटोत्कच किसी असीम संकट में फंसा है। उन्होंने तुरन्त उसकी सहायता के लिए भीमसेन को भेज दिया। घटोत्कच की वही दहाड़ द्रोण ने भी सुनी तो उन्होंने समझा कि

दुर्योधन किसी विकट संकट में फंस गया है तो उसकी रक्षा के लिये वे स्वयं ही एक बड़ी सेना लेकर वहाँ जा पहुँचे। आज का युद्ध बड़ा घमासान था। पाण्डवों ने कौरवों की बहुत सी सेना का संहार कर डाला। इस पर दुर्योधन ने भीष्म पर फिर वहीं आरोप लगाया कि यदि आप मन से लड़ते तो पाण्डव हमारी सेना की ऐसा दुर्गति न कर सकते थे। इससे मालूम होता है कि आप उन पर दया करते हैं। किन्तु भीष्म जी तो ईमानदारी से लड़ रहे थे। उन्होंने दुर्योधन से कहा कि कल सुबह तुम मेरा बल देखना या तो मैं स्वयं युद्ध में मारा जाऊँगा या उनका सर्वनाश कर डालूंगा।

9. युद्ध का नौवां दिन (श्रीकृष्ण और भीष्म पितामह)

आज नौवें दिन युद्ध आरम्भ होते ही अभिमन्यु अपने भाई इरावान का बदला लेने के लिये अलम्बुष राक्षस से भिड़ गया। अभिमन्यु ने उसके रथ के टुकड़े-टुकड़े कर धरती पर बिखेर दिये और वह राक्षस अपनी जान लेकर भाग गया। दुर्योधन के वचनों से घायल भीष्म ने इस दिन ऐसा भयंकर प्रलय मचाया कि जिसके सामने अब तक के सब प्रलय फीके पड़ गये। पाण्डवों के सैनिक उसी तरह भागते दिखाई दिये, जिस तरह वन में पकड़ी हुई गौएं सिंह को देखकर भागती हैं। भीष्म ने आज तो अर्जुन के रथ पर ऐसी बाण वर्षा की कि सारा रथ अंधकार में छिप गया। घोड़े, रथ, श्रीकृष्ण और अर्जुन सभी उस घने अंधकार में डूब गये। श्रीकृष्ण ने बड़ी कुशलता से रथ चलाया और वह अंधकार से बाहर निकल आये। फिर तो अर्जुन ने बार-बार भीष्म के धनुष काटने आरम्भ कर दिये। इतने पर भी उस कुशल और अविजेय वृद्ध योद्धा ने अनेक बाण ऐसे मारे कि जिन्हें अर्जुन किसी प्रकार रोक न सका और वे सांय-सांय करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन के शरीरों में आ घुसे।

आज श्रीकृष्ण भीष्म के बाणों से दूसरी बार घायल हुए और इस बार भी वे पहले की तरह क्रोध में भरकर रथ से नीचे चक्र उठा भीष्म के वध के लिये उन पर झपट पड़े। अर्जुन यह देख चिल्लाता हुआ श्रीकृष्ण के पीछे भागा और बोला—ठहरिये, प्रतिज्ञा न तोड़िये। मुझे एक अवसर और दीजिये। भीष्म को बींधना तो मेरा काम है। अर्जुन का अनुरोध स्वीकार कर श्रीकृष्ण पुनः रथ पर सवार हो गये। भीष्म और अर्जुन का युद्ध फिर शुरू हो

गया। दोनों बराबर के योद्धा थे। क्या इनका युद्ध कभी समाप्त हो सकता था? इनके युद्ध से मानों सूर्य भी आतंकित हो गया और वह क्षितिज की ओर जाने लगा। भीष्म के आज के रण कौशल को देखकर दुर्योधन फूला न समाया। भीष्म के पराक्रम को देख युधिष्ठिर शोक करने लगे और युद्ध बंद करने को कहने लगे। श्रीकृष्ण ने उन्हें साहस दिलाया। फिर युधिष्ठिर ने कहा कि चलो, भीष्म से उनके मरने का उपाय पूछे। दोनों भीष्म के पास जाकर उनके मारे जाने का उपाय पूछने लगे। भीष्म ने कहा—युधिष्ठिर! तुम सब मिलकर भी मुझे मार नहीं सकते हो। किन्तु यदि शिखण्डी को सामने करके तुम मुझ से युद्ध करोगे, तो मैं उसकी ओर नहीं देखूंगा, क्योंकि वह नपुंसक है। तुम्हारा काम इस तरह पूरा हो सकता है। यह जान युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण वापिस आ गये।

10. युद्ध का दसवां दिन (भीष्म पितामह शर-शय्या पर)

दसवें दिन प्रातः काल होते ही दोनों पक्षों की सेनाओं में युद्ध छिड़ गया। उस दिन जैसा घमासान युद्ध इससे पर्व कभी नहीं हुआ था। आज सब कौरव मिलकर भीष्म की रक्षा करने लगे और पाण्डव भीष्म के वध का प्रयास करने लगे। भीम और अर्जुन ने बड़ा परिश्रम करके कौरवों की सेना को इधर-उधर भगाकर भीष्म के सामने शिखण्डी को खड़ा कर दिया। भीष्म पितामह ने जब पाण्डवों के मोर्चे पर शिखण्डी को सबसे आगे खड़े देखा तो उन्हें क्षणमात्र में ही आभास मिल गया कि आज क्या होने जा रहा है। उन्होंने अर्जुन को शिखण्डी के पीछे ओट में खड़े देखा और मुस्करा कर बोले—अर्जुन आज सामने नहीं आयेगा?

आज क्या शिखण्डी की ओट से ही बाण चलायेगा? युद्ध शुरू होते ही शिखण्डी ने निशाना साध कर एक ऐसा बाण चलाया, जो भीष्म का कवच छेद कर छाती में उतर गया। भीष्म को बहुत क्रोध आया। शिखण्डी की आँखें चुंधिया गई और उसके रोम-रोम में भय की लहर दौड़ने लगी। परन्तु शिखण्डी को यह अच्छी प्रकार ज्ञात था कि भीष्म उसकी ओर कोई बाण नहीं छोडेंगे। शिखण्डी की ही नहीं उसके पीछे खड़े अर्जुन को भी भीष्म के बाण आज स्पर्श न कर सकेंगे। शिखण्डी ने दूसरा बाण छोड़ा वह भी भीष्म के वक्ष

स्थल में जा घुसा। भीष्म के मन में वह घटना एक क्षण में ही दुहरा गई कि किस प्रकार उन्होंने प्रतिज्ञा के नाम पर सुन्दर कन्या का हाथ स्वीकार करने से मना कर दिया था? किस प्रकार उन्हीं के कारण अम्बा सामाजिक अन्याय का शिकार होती गई? किस प्रकार वह चिता बनकर जल मरी? उसने दूसरा जन्म लिया है, केवल इसलिये कि भीष्म का वध करना है। वह तड़पती थी दूसरे जन्म में भी स्त्री ही थी। केवल रणभूमि में उतरने के लिए उसने तप करके स्त्री शरीर का त्याग कर दिया।

उस समय भीष्म ने अपना वह अपराध स्पष्ट रूप से स्वीकार किया और कहा कि यदि अम्बा मेरा वध करने आई है तो उसे पूरा अधिकार है। भीष्म हथियार छोड़कर कुछ देर तक मूर्ति की तरह खड़े रहे और शिखण्डी ने जल्दी-जल्दी बाण चलाकर उनके शरीर को मनमाना बींध डाला। अब अर्जुन ने देखा कि भीष्म शिखण्डी की ओर कोई बाण नहीं चला रहे हैं तो उसने विनीत भाव से उन्हें मन ही मन प्रणाम किया और गाण्डीव उठा लिया। गाण्डीव से एक-एक तीर ऐसा छोड़ा जो उनके मर्मस्थल को बींधता चला गया। अर्जुन के तीर भीष्म जी के आर-पार निकल कर रुकने लगे। उनकी पीठ की ओर तीर ही तीर रुके हुए दीखने लगे। भीष्म के शरीर में अंगुल-भर भी जगह ऐसी नहीं थी जहाँ अर्जुन का बाण आर-पार न गड़ा हो। भीष्म रथ से भूमि पर पीठ के बल गिर पड़े और उन बाणों पर ही टिके रहे। बाण शय्या के समान थे। भीष्म के गिरते ही कौरव दल में हाहाकार मच गया। क्या कौरव, क्या पाण्डव प्रत्येक दिशा से एक-एक योद्धा पूज्य भीष्म की ओर भाग पड़ा। श्रीकृष्ण भी दौड़ चले। भीष्म के चारों ओर सम्पूर्ण देश के राजा महाराजा हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

भीष्म ने सबसे कहा कि मेरे सिर के नीचे कोई तकिया नहीं, गर्दन लटकी जा रही है। यदि कुछ सहारा मिल जाये तो अच्छा हो। राजा दौड़ पड़े और अपने-अपने शिविरों से कोमल-कोमल तकिये उठा लाये। परन्तु ये तकिये उन्हें कहाँ स्वीकार थे। वे उसी अर्जुन की ओर देखने लगे। जिसने उन्हें बाण मार-मार कर गिराया था। उससे बोले—पुत्र! जैसी शय्या दी है वैसा ही सिरहाना भी दो। अर्जुन ने तीन बाण इस धरती पर इस प्रकार छोड़े

कि भीष्म के लटकते सिर को उन्हीं बाणों का सहारा मिल गया। भीष्म ने सन्तोष से अपनी आँखें मूंद ली और फिर अर्जुन से कहा—पुत्र मुझे प्यास लगी हैं सुनते ही अर्जुन ने एक तीर इतने जोर से पृथ्वी पर मारा जो बहुत नीचे पहुँच गया और उससे जलधारा फूट पड़ी जो सीधा भीष्म जी के मुँह में आ गिरी।

भीष्म ने राजाओं के मध्य खड़े दुर्योधन को देखा। उसका चेहरा निस्तेज था उसे निराशा ने घेर रखा था। भीष्म के गिरते ही मानो दुर्योधन की सब आशायें मिट गई। भीष्म ने सब के सामने अब फिर उसे समझाना चाहा कि अब भी पाण्डवों से सन्धि कर ले। उत्तर में उसने न हाँ कहा न ना कहा। कर्ण की प्रतिज्ञा थी कि जब तक भीष्म सेनापति है, वह युद्धभूमि में नहीं उतरेगा। वह योद्धा के रूप में नहीं किन्तु विनीत पुत्र के रूप में युद्ध भूमि में आज भीष्म के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। फिर कंपित स्वर में बोला पूज्य भीष्म! जो कर्ण कभी आपका स्नेह भाजन नहीं हो सका, वह कर्ण आपको प्रणाम करता है। शरशय्या के देखने से उनके मन में भय उत्पन्न हो गया था। भीष्म उस पर द्रवित हो गये। उन्होंने स्नेहपूर्वक कर्ण के सिर पर हाथ रखा और ऐसे वचन कहे जिससे उसका सारा भय जाता रहा। उन्होंने कर्ण को यह भी बता दिया कि वह सारथी का पुत्र नहीं, कुन्ती का पुत्र है। उसे पाण्डवों के साथ शत्रुता त्याग कर सन्धि कर लेनी चाहिये।

भीष्म की बात सुनकर कर्ण ने कहा कि भीष्म मुझे भी मालूम है कि पाण्डव मेरे छोटे भाई हैं। किन्तु क्षमा करे, इस दुःखद अवसर पर भी मुझे ऐसे वचन कहने पड़ रहे हैं जो आपके हृदय को कष्ट देंगे। सत्य बात तो यह है कि मैं पाण्डवों के साथ सन्धि कदापि नहीं कर सकता। अपनी बात की पुष्टि में कर्ण ने वही बातें कही जो माता कुन्ती के सामने कही थी। भीष्म ने दुःखी मन से उसे आशीर्वाद दिया। फिर उन्होंने श्रीकृष्ण को कहा कि सूर्य अभी दक्षिणायन में है, जब उत्तरायण में होगा। मैं तभी अपने प्राण त्यागूँगा। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मुझ में इतनी शक्ति है कि जब तक चाहूँ, अपने प्राण रोक सकता हूँ।

भीष्म शरशय्या पर आराम से लेट गये और सब राजा महाराजा भीष्म को प्रणाम करके रोते बिलखते अपने-अपने शिविरों को चले गये। सब को यही आशा थी कि भीष्म के बाद कौरवों का सेनापति कर्ण बनाया जायेगा। भीष्म शरशय्या पर पड़े हुए अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। कर्ण ने सबके सामने प्रतिज्ञा की थी कि जिस प्रकार भीष्म ने पाण्डवों से युद्ध किया था मैं भी उसी प्रकार बल्कि उससे भी अधिक वेग से युद्ध करूँगा या तो युद्ध में मैं स्वयं मर जाऊँगा या उनकी सेना का संहार करके छोड़ूँगा। इसके पश्चात् कर्ण भीष्म के पास जाकर अपने अपराधों की क्षमा मांगने लगा। भीष्म ने उसे स्नेह सहित आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद लेकर वह प्रसन्न हो युद्ध भूमि की ओर चल पड़ा। कर्ण के आग्रह पर आज ग्यारहवें दिन आचार्य द्रोण को सेनापति का पद प्रदान कर दिया गया।

11. युद्ध का ग्यारहवाँ दिन (द्रोणाचार्य की सेनापति पद पर नियुक्ति)

द्रोणाचार्य के रचे व्यूहों में जब कर्ण का रथ अपनी ध्वजा फहराता हुआ इधर से उधर झपटने लगा तो कौरवों का उत्साह फिर बढ़ने लगा। सब यही कहते सुने गये कि भीष्म पाण्डवों का वध करना नहीं चाहते थे इसलिए तो वे मन से नहीं लड़े। लेकिन कर्ण, अर्जुन का वध अवश्य करेगा। अब कोई शक्ति नहीं जो कौरवों के पास विजयश्री को आने से रोक ले। सब सैनिकों का उत्साह बढ़ रहा था और वे प्रसन्न हो रहे थे। परन्तु दुर्योधन का मन प्रसन्न नहीं था, उसे अपनी हार साफ दिखाई दे रही थी।

12. युद्ध का बारहवाँ दिन (अभिमन्यु का वध)

बारहवें दिन बात इतनी बिगड़ चुकी थी कि यदि कौरव सन्धि करना भी चाहें तो पाण्डव तैयार नहीं होंगे। पाण्डवों को नीचा दिखाने के लिये कपट किये बिना, कपट का चक्र चलाये बिना जिस दुर्योधन का काम अब तक नहीं चला, भला जिस युद्ध में उसका सब कुछ दाव पर लगा हुआ था, उस युद्ध में उसका काम बिना छल के कैसे चल सकता था? उसने एक छल सोचा और अपना छल पूरी ढिठाई के साथ आचार्य द्रोण पर भी प्रकट कर दिया। दुर्योधन का छल सुनकर द्रोण सोच में पड़ गये कि इस दुष्ट से क्या कहा

जाये। दुर्योधन ने कहा – आचार्य ! हमने यह सोचा कि किसी प्रकार युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लिया जाये, तब वह सन्धि न भी करना चाहे तो उसे येन-केन-प्रकारेण तैयार किया जा सकता है। अब तो पांडवों को आधा राज्य देकर युद्ध रुकवा दें। फिर दुबारा चौपड़ खेलकर उससे सभी कुछ वापिस छीना जा सकता है, फिर उसे बनवास और अज्ञातवास के लिए भी भेजा जा सकता है।

आप तो बस इतना कर दें कि युधिष्ठिर को जीवित पकड़ कर ला दें। द्रोणाचार्य ने यह विचारकर कि इस बहाने युधिष्ठिर की प्राण रक्षा हो जाएगी और मेरी नमक हलाली का परिचय भी दुर्योधन को मिल जायेगा। युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लाने की शपथ ले ली। यह समाचार गुप्तचरों द्वारा पाण्डवों को तुरन्त ही ज्ञात हो गया। पाण्डवों ने अपना व्यूह इस प्रकार बनाया कि जिससे युधिष्ठिर की प्राण रक्षा भली प्रकार से हो सके। द्रोणाचार्य ने पाण्डवों का व्यूह तोड़ देने में कोई कसर न छोड़ी किन्तु युधिष्ठिर के समीप तक पहुँच सकना उनके लिये सरल काम नहीं था। द्रोण ने दुर्योधन को स्पष्ट कह दिया कि अर्जुन के कारण मेरा रास्ता बार-बार रुक जाता है। अतः तुम कोई ऐसा उपाय करो जिससे मेरा और अर्जुन का आमना सामना ही न हो। तभी मैं अपनी शपथ पूरी कर सकता हूँ। दुर्योधन के पास चापलूसों की कमी न थी। त्रिगर्त देश के राजा सुशर्मा ने उसे बताया कि मैं अपने भाइयों और सेना सहित संशप्तक व्रत धारण करके अर्जुन को ललकारने के लिये तैयार हूँ और युद्ध करते-करते उसे युधिष्ठिर से दूर हटाना भी कोई बड़ी बात नहीं। यह कहकर उन्होंने दक्षिण की ओर मुंह किया और अर्जुन को ललकारते हुए दौड़ लगा दी। वे टिड्डी दल की तरह झपटते आ रहे थे। समूह में बड़ी प्रबल शक्ति होती है। दोनों ओर से युद्ध होने लगा। अर्जुन सशंप्तकों की सेना पर ऐसे टूटा कि उन्हें समझ ही न पड़ा कि वह कब कहाँ है?

श्रीकृष्ण ने इतनी तेजी से रथ चलाया और अर्जुन ने ऐसे वेग से बाण चलाये कि सर्वत्र अर्जुन ही अर्जुन दृष्टिगोचर होता था। वे अर्जुन को परास्त तो न कर पाये किन्तु उन्होंने अर्जुन को युधिष्ठिर से दूर तो कर दिया। अर्जुन के दूर निकल जाने पर द्रोण ने युधिष्ठिर की ओर बाज की तरह आक्रमण

किया। वे इतनी तेजी से बढ़ रहे थे कि उन्हें रोकने में मत्स्य देश के कई राजकुमार, द्रौपदी के कई भाई और अनेक वीर राजा यमलोक पहुँच गये। कौरव सोचने लगे कि आज युधिष्ठिर अवश्य पकड़े जायेंगे। अर्जुन समझ गया कि संशप्तकों का मुख्योद्देश्य मुझसे लड़ना नहीं है, अपितु युधिष्ठिर से मुझे दूर ले जाना हैं उनसे लड़ने के समय व्यर्थ गंवाना अर्जुन ने उचित नहीं समझा और उसकी इच्छानुसार श्रीकृष्ण ने उसका रथ युधिष्ठिर की दिशा में मोड़ दिया संशप्तक चिल्लाने लगे– अर्जुन कायर! अर्जुन कायर! अर्जुन कायर!

अर्जुन ने उनके नारों की कुछ परवाह किये बिना युधिष्ठिर के पास आ जाना ही उचित समझा। कौरवों को यह सम्भावना कदापि नहीं थी कि अर्जुन ऐसा करेगा। कौरवों की सब आशायें धूल में मिल गई। लाशों और हड्डियों के ढेरों पर रथ उछालता, रक्त की नदियाँ पार करता और अपने गाण्डीव की टंकार से चारों दिशाओं को प्रकम्पित करता अर्जुन जब अचानक ही सामने आकर खड़ा हो गया तो द्रोण का ही सांस एक बार तो जहाँ का तहाँ रह गया। उनकी योजना विफल हो गई। अर्जुन की विकराल बाण वर्षा से द्रोण को आगे बढ़ना असम्भव ही हो गया। अर्जुन को अचानक आया देख पाण्डव सेना में भी जान पड़ गई। घमासान युद्ध छिड़ गया। लड़ते-लड़ते शल्य और अभिमन्यु आपस में भिड़ पड़े। उनका बाणों से, तलवार से और गदाओं से युद्ध हुआ। फिर अभिमन्यु को पीछे करके भीम शल्य के सामने आकर गदा से लड़ने लगा। दोनों में भयानक युद्ध हुआ। द्रोणाचार्य के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ। अर्जुन ने ऐसी करामात दिखाई कि गुरुजी के होश ठिकाने लग गये। लड़ते-लड़ते सूर्यास्त हो गया। द्रोण अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सके, अर्जुन हर्ष के कारण उछलने लगा और दुर्योधन हाथ मलता रह गया। आज उसे जो दुःख हुआ उसका वर्णन करना कठिन है।

कौरवों और पाण्डवों को राज्य सत्ता के लिए भयंकर युद्ध करते-करते 12 दिन व्यतीत हो गये। किन्तु युद्ध का कुछ निर्णय न हो सका। अगले दिन त्रिगर्त देश के बचे खुचे वीरों ने दुर्योधन की आज्ञा से अर्जुन को युद्ध के लिए फिर ललकारा। उनका निमंत्रण पाकर अर्जुन पुनः उनसे लड़ने के लिये पहुँच

गया। वे उसे लड़ाते हुए दक्षिण दिशा की ओर ले गये। अर्जुन को दूर गया जान कर कौरव सेनापति आचार्य द्रोण ने ऐसा व्यूह बनाया जिसे तोड़ना, अर्जुन के सिवाय कोई नहीं जानता था। इस व्यूह का नाम था चक्रव्यूह। इस व्यूह को बनाकर द्रोणाचार्य बड़ा गौरव अनुभव कर रहे थे। भीम, धृष्टधुम्न आदि महायोद्धाओं के बहुत रोकने पर भी जब द्रोणाचार्य युधिष्ठिर की दिशा में बढ़ता ही गया तो पाण्डवों को चिन्ता हुई और वे सोचने लगे कि अब क्या होगा? चक्रव्यूह को भेदन करने का प्रश्न भी पाण्डवों के मस्तिष्क में एक प्रमुख प्रश्न बना हुआ था। इस समस्या का हल ढूंढते उनकी दृष्टि अर्जुन के कुमार वीर अभिमन्यु पर पड़ी। वह चक्रव्यूह की कुछ-कुछ जानकारी रखता था।

सबके कहने पर युधिष्ठिर ने उससे कहा—बेटे, चक्रव्यूह को न तोड़ने पर हमारी हार निश्चित् है। इसे भंग करना तुम्हारे पिता के अतिरिक्त और किसी को आता नहीं। कल की तरह वह आज भी हमारी रक्षा के लिए समय रहते पहुँच पायेगा या नहीं। कौन जानता है? यदि द्रोण ने मुझे पकड़ लिया तो हमारे लिये बड़ी लज्जा की बात होगी। तुम्हारी सुकुमार अवस्था को देखते हुए मुझे तुम्हें इस काम के लिये कहते संकोच तो हो रहा है। किन्तु तुम्हारी अतुलनीय वीरता पर भी हमें विश्वास है। फिर चक्रव्यूह को भेदने की जानकारी भी तो केवल तुम्हें ही है। युधिष्ठिर की बात सुनकर अभिमन्यु ने उत्तर दिया कि अपनी वीरता पर तो मुझे भी कम विश्वास नहीं, किन्तु चक्रव्यूह भेदने की जानकारी मुझे पूरी नहीं। जब मैं माँ के गर्भ में था, तब मेरे पिता जी ने माँ को समझाया था कि चक्रव्यूह में किस प्रकार प्रवेश करते हैं। इतना तो मैंने उसी समय सीख लिया था। किन्तु उस दिन पिता जी ने माँ को यह नहीं बताया था कि इस व्यूह से निकलते किस प्रकार है? आपकी आज्ञा पाकर मैं चक्रव्यूह में घुस तो जाऊँगा, किन्तु उसमें से बाहर नहीं निकल पाऊँगा।

भीमसेन बोला—बेटा, इसकी चिन्ता न करो। तुम्हारे ठीक पीछे-पीछे मैं चलूंगा। धृष्टधुम्न और सात्यकि जैसे वीर पूरे दलबल के साथ मेरे साथ-साथ रहेंगे। बस एक बार अन्दर घुसने की देर है फिर तो हम कौरवों का पूरा व्यूह

नष्ट-भ्रष्ट कर डालेंगे। बाहर निकलने के लिए हम सभी दिशायें पहले ही खोल देंगे। हम सब साथ-साथ ही बाहर निकलेंगे। भीम द्वारा आश्वासन मिलने पर अभिमन्यु तैयार हो गया। इस वीर बालक को आगे करके जब पाण्डवों ने चक्रव्यूह पर धावा बोला तो पहले ही झटके में अभिमन्यु का रथ धँसता ही चला गया। पीछे भीमसेन, धृष्टधृम्न आदि हैं। काफी आगे जाकर जब उसने पीछे की ओर अपनी नजर घुमाई तो पीछे कोई भी नहीं था।

बात हुई कि अभिमन्यु ज्यों ही व्यूह में प्रविष्ट हुआ, त्यों ही जयद्रथ ने आकर व्यूह की सारी तोड़ फोड़ ठीक कर दी। व्यूह के अन्दर घुसने को तैयार पाण्डवों के साथ टक्कर लेकर उन्हें बाहर रोक दिया। एक भी पाण्डव भीतर नहीं जा सका। युधिष्ठिर और भीम के साथ जयद्रथ का भारी युद्ध हुआ। पाण्डवों ने उस पर अनेक प्रहार किये किन्तु उसका बाल भी बांका न हुआ। जयद्रथ का रथ पाण्डवों के रास्ते में हिमालय के समान अड़ गया था। पाण्डव चाहते थे कि जयद्रथ बेशक न मरे, किन्तु यह एक बार हमारे रास्ते से हट जाए जिससे हम अन्दर जाकर अभिमन्यु के सहायक बन सकें। पाण्डवों के लिए तो एक-एक क्षण भारी हो रहा था, किन्तु जयद्रथ ने उन्हें बहुत देर तक बाहर ही रोके रखा और फिर एक बहुत भारी आक्रमण करके उन्हें और भी पीछे हटा दिया। अभिमन्यु ने आगे बढ़ते हुए महाप्रलय मचा दिया। दुर्योधन ने जब यह देखा कि अभिमन्यु ने रक्त की नदियाँ बहा दी हैं और हमारे वीरों की लाशों से धरती को पाट दिया है तो उस अद्‌भुत वीर से लड़ने के लिए वह स्वयं आगे पहुँचा। अभिमन्यु ने उसे कसकर शिकंजे में जकड़ दिया और यदि सेनापति द्रोण उसकी सहायता के लिए कुछ और सेना न भेजते तो अभिमन्यु के हाथों आज उसका वध होना निश्चित् ही था। दुर्योधन के सहायक अनेक वीर राजाओं का वध तो अभिमन्यु कर ही चुका था।

अभिमन्यु ने भाला चलाकर दुर्योधन के वीर पुत्र लक्ष्मण को मार डाला। उससे पूर्व वह कर्ण का कवच तोड़ चुका था। लक्ष्मण की लाश गिरते ही कौरवों में हाहाकार मच गया। दुर्योधन गला फाड़कर चिल्लाया—मारो, अभिमन्यु को अभी मार डालो, छल से कपट से, जैसे भी हो इस दुष्ट छोकरे को अभी मार डालो।

जिस प्रकार पाण्डवों ने शिखण्डी को आगे करके आपद्धर्म बताकर भीष्म को गिरा दिया था, उसी प्रकार कौरवों ने भी आपद्धर्म कहकर अभिमन्यु को गिराने के लिए अनीति का आश्रय लिया। अभिमन्यु को घेरने के लिए कौरवों के आठ महारथी एक साथ ही सामने आये, जिसमें सेनापति द्रोण और अश्वत्थामा जैसे विख्यात वीर भी थे। वे एक-एक करके नहीं अपितु सब इकट्ठे ही बालक अभिमन्यु पर टूट पड़े। कर्ण ने कायरतापूर्वक उसका पीछे जाकर उस पर बाण चलाये और उसके घोड़ों की रास काट डाली। और उसका धनुष भी तोड़ डाला। दूसरों ने उसके सारथी और घोड़ों को मार गिराया। अभिमन्यु ढाल तलवार लेकर धरती पर कूद पड़ा और युद्ध करने लगा। उसके समीप आने का साहस किसी का नहीं हो रहा था। कर्ण ने दूर से ही बाण चलाए और उसकी ढाल काट डाली। उसी समय द्रोणाचार्य ने भी तीव्र बाण वर्षा की और अभिमन्यु की तलवार कट कर गिर गई।

अब अभिमन्यु के पास कोई हथियार न रहा, वह निहत्था हो गया। वह क्रोध में तो भरा हुआ था ही, उसने आव देखा न ताव, झट किसी के रथ का टूटा पहिया ही उठा लिया और उसे जोर-जोर से घुमाकर शत्रुओं पर झपटना शुरू कर दिया। उसका स्वरूप बड़ा विकराल बना हुआ था। कौरवों की सेना भागती जा रही थी। अब सेनापति द्रोण ने संकेत किया तो पूरी सेना ही अभिमन्यु पर एक साथ टूट पड़ी। अब तो अभिमन्यु के हाथ में रथ का वह टूटा पहिया भी न रहा। वह अकेला वीर बिल्कुल निहत्था ही रह गया। उसके शरीर के अंग-अंग से खून बह रहा था और वह बुरी तरह थक चुका था। इस पर भी उसने गदा उठा ली और दुःशासन का बेटा भी गदा उठाकर उस पर झपट पड़ा। अभिमन्यु ने उसे तो बुरी तरह से घायल कर गिरा ही दिया। किन्तु साथ-साथ वह वीर बालक स्वयं भी गिर गया। दुःशासन ने इस अवस्था में ही उसके सिर पर गदा मारी और वह मर गया। जब तक संसार में सूर्य और चन्द्रमा चमकेंगे तब तक इस वीर बालक का नाम भी चमकता रहेगा। नीच दुःशासन को लज्जा नहीं आई जो उसने गिरे हुए बालक को कायरता से मारा, बहादुरी तो तब थी जब उसे मैदान में मारता।

अभिमन्यु की लाश को कौरव योद्धाओं ने चारों ओर से घेर लिया और

लगे हर्ष से नाचने, अट्हास करने। लेकिन आकाश में उड़ते पक्षी चीत्कार कर रहे थे और धरती कराह-कराह कर रही थी कि यह अधर्म है, या पाप है। अर्जुन ने युद्ध में संशप्तकों का संहार कर डाला और उनका युद्ध रुक गया। अर्जुन अपने शिविर की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसे किसी अनिष्ट की आशंका हुई और उसका दिल जोरों से धड़कने लगा। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—

मेरा हृदय धड़क रहा है, मुझसे बोला नहीं जाता, सारे शरीर में सनसनी-सी मालूम हो रही है। अवश्य कोई अनिष्ट हुआ है।

इस पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—

युधिष्ठिर का साम्राज्य फिर से स्थापित होना निश्चित् है। इस बड़े इष्ट की सिद्धि हेतु छोटे-मोटे अनिष्ट हो भी जाएं तो उनकी बहुत परवाह न करनी चाहिये।

शिविर में घुसते ही उसे अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार मिला तो वह विलाप करता-करता मूर्च्छित हो गया। अभिमन्यु अर्जुन का अत्यन्त प्रिय पुत्र था। उससे तो अर्जुन ने न जाने क्या-क्या आशायें लगा रखी थीं। उसका विवाह अभी-अभी हुआ था। उत्तरा के हाथों की मेंहदी अभी सूखी भी न थी। परम पराक्रमी अभिमन्यु को आठ-आठ महारथियों ने एक साथ मिलकर अनीति से मार डाला—अर्जुन बेतहाशा उन्हें कोस रहा था। अर्जुन को उस समय श्रीकृष्ण भी न संभाल सके। इधर युधिष्ठिर अलग रो रहे थे। उनके आँसुओं की धारा रुक नहीं रही थी कि मैंने ही उस बालक को चक्रव्यूह में भेजा, राजपाट के लोभ में मैंने ही उसकी हत्या करवाई, मुझ सा पापी दूसरा कौन होगा? भीम, नकुल, सहदेव, धृष्टधुम्न और सात्यकि के आँसू रोके भी नहीं रुकते थे। सभी के हृदय यह सोचकर फटे जा रहे थे कि प्रिय अभिमन्यु की करुणाजनक मृत्यु का समाचार उत्तरा के सामने किस प्रकार सुनाया जा सकेगा और तब उत्तरा का क्या होगा? तभी उठकर अर्जुन ने सबके सामने प्रतिज्ञा की—

जिस जयद्रथ के कारण मेरा पुत्र मारा गया है, उसे यदि मैंने कल सूर्य डूबने से

पहले न मारा तो मैं अग्निदाह कर लूँगा ।

इन शब्दों के साथ अर्जुन ने बड़े जोर से गाण्डीव की टंकार की । टंकार की ध्वनि कौरवों के शिविर तक पहुँच कर रुकी ।

जयद्रथ के जन्म के साथ एक अनोखी दंतकथा जुड़ी हुई है । कहते हैं कि जब इसका जन्म हुआ था तब आकाशवाणी हुई थी कि बड़ा होकर यह राजकुमार अत्यन्त यशस्वी होगा, किन्तु इसकी मृत्यु किसी श्रेष्ठ क्षत्रिय के हाथों सिर काटे जाने से होगी । जयद्रथ का पिता बड़ा तपस्वी था । उसने तभी शाप दिया कि जिसके द्वारा मेरे पुत्र का कटा हुआ सिर भूमि पर गिरेगा, उसी क्षण स्वयं उसी के सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे । यह शाप प्रायः सबको ज्ञात था । यही कारण था कि युद्धभूमि में उसका आतंक बढ़ा-चढ़ा था । भला कौन उसका सिर काटकर अपने सिर के सौ टुकड़े करवाना चाहेगा । जब जयद्रथ युवा हो गया तो इसके पिता ने इसे तो सिन्धुदेश के सिंहासन पर बैठा दिया और स्वयं तपस्या करने के लिए वन में चला गया । धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की बहिन दुःशला का विवाह इसके साथ कर दिया था ।

अर्जुन की प्रतिज्ञा की बात बिजली की तरह सारे युद्ध क्षेत्र में फैल गई । जब अर्जुन की प्रतिज्ञा की बात दुर्योधन को मालूम हुई तो उसका दिल बल्लियों उछलने लगा । वह कहने लगा कि यदि कल शाम तक किसी प्रकार जयद्रथ की रक्षा कर ली जाये तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अर्जुन अवश्य ही आत्मदाह कर लेगा । अर्जुन ही पाण्डवों का सबसे बड़ा बल है जब वह ही न रहेगा तब तो पाण्डवों को रौंद कर मिट्टी में मिलाना चुटकियों का ही काम हो जायेगा । यदि अर्जुन जयद्रथ को मारने में सफल हो जायेगा, तब भी ज्यों ही जयद्रथ का सिर कटकर भूमि पर गिरेगा, त्यों ही अर्जुन के सिर के भी सौ टुकड़े हो जायेंगे । दुर्योधन अपने दोनों हाथों में लड्डू के सपने देख रहा था और हर्ष से उसकी बांछे खिल गई थी ।

13. युद्ध का तेरहवाँ दिन (जयद्रथ की रक्षा)

अगले दिन सायंकाल तक जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा अर्जुन ने की थी । इसलिये आज दोनों पक्षों में घमासान युद्ध की आशंका थी । जयद्रथ की

रक्षा के लिए दुर्योधन ने पूरे उपाय किये और उधर युधिष्ठिर को भी अर्जुन के प्राणों की चिन्ता थी, इसलिये उन्होंने अर्जुन का हाथ श्रीकृष्ण के हाथों में पकड़ाकर उसकी प्राण रक्षा की प्रार्थना की और श्रीकृष्ण ने इसे स्वीकार कर लिया। द्रोणाचार्य ने अपनी सेना का शकट-व्यूह बनाया। उसके मध्य में कमल व्यूह और कमल-व्यूह को भी बड़े-बड़े महारथियों से रक्षित करके जयद्रथ को खड़ा किया गया।

दोनों पक्षों की सेनाओं में घमासान युद्ध छिड़ गया। द्रोणाचार्य और अर्जुन ने दोनों ओर की सेनाओं का महानाश कर डाला। कौरव वीरों को मारते-मारते अर्जुन शकट-व्यूह के मुँह पर पहुँच गया। वहाँ आचार्य द्रोण स्वयं डटकर खड़े थे। वह आचार्य से बड़ी विनम्रता के साथ बोला—आचार्य! राजा जयद्रथ का वध आज शाम तक कर देने की शपथ मैंने ली है, कृपया मुझे रास्ता दे दीजिये, जिससे मैं अपनी शपथ पूरी कर सकूं। द्रोणाचार्य ने मुस्करा कर कहा कि वत्स! क्या सचमुच तुम ऐसी आशा रखते हो कि मैं रास्ता दे दूँगा? उन दोनों में घमासान युद्ध छिड़ गया। दोनों कांटे के वीर थे। उनकी टक्कर बराबर की थी। उनमें विजय अथवा पराजय का निर्णय नहीं हो सकता था।

अर्जुन ने अपना समय व्यर्थ होते देखकर सहसा युद्ध रोक दिया। द्रोणाचार्य ने फिर मुस्करा कर कहा— क्यों परास्त! अर्जुन ने कहा कि आप से लड़ने का समय अभी नहीं आया गुरु जी! आप तो मुझे रास्ता देकर कृतार्थ करें। गुरु ने कहा कि अर्जुन! पहले मुझे हराओ, फिर आगे बढ़ो! युद्ध में तुम कभी हटते नहीं हो, यही तुम्हारी प्रतिष्ठा है। अर्जुन ने विनीत स्वर में आचार्य से कहा—गुरुदेव! आप मेरे शत्रु नहीं है, गुरु हैं और पिता तुल्य हैं। यदि आपको हराकर किये बिना मैं आगे निकल गया तो इसमें बुरा क्या है, आज तो मेरी प्रतिष्ठा की जयद्रथ के सामने कीमत लगेगी।

गुरु और शिष्य में यह संवाद चल ही रहा था कि श्रीकृष्ण ने संकेत किया और अर्जुन के रथ के घोड़े द्रोणाचार्य से आगे निकल गये। आगे भोज सेना मिली, उसे अर्जुन ने अपनी भीष्ण बाण वर्षा से तितर-बितर कर दिया। वहाँ से आगे बढ़कर अर्जुन की टक्कर स्वयं दुर्योधन से हुई। दुर्योधन के

कवच पर अर्जुन के बाणों का कोई प्रभाव नहीं हो रहा था। तत्काल ही अर्जुन मुस्करा कर बोले कि मैंने रहस्य जान लिया है। एक बार आचार्य द्रोण ने स्वयं मुझसे कहा था कि उनके पास कोई ऐसा कवच है जिस पर किसी शस्त्र-अस्त्र का प्रभाव ही नहीं होता। मालूम पड़ता आचार्य ने वही कवच इस दुष्ट दुर्योधन को दे रखा है। मेरे पास इसका भी उपाय है। फिर अर्जुन ने ऐसी निपुणता के साथ बाण वर्षा की कि दुर्योधन का रथ चूर-चूर होकर बिखर गया। उसके सारथी और घोड़े मारे गये, धनुष भी कट गया।

अर्जुन ने अंगुलियां बींध दी और नाखुन भी छेद डाले। दुर्योधन का कवच से बाहर जितना भी शरीर था, सारा क्षत विक्षत हो गया और वह हाहाकार करता हुआ वहाँ से भाग निकला। अर्जुन की दक्षता पर श्रीकृष्ण भी अचम्भित हुए बिना न रह सके। अपना मार्ग साफ करके, गाण्डीव की टंकार से गगन मण्डल को गुंजायमान करके अर्जुन भीष्ण गड़गड़ाहट के साथ अपने रथ को जयद्रथ की ओर ले झपटा। इधर द्रोणाचार्य को धृष्टधुम्न ने उलझा रखा था क्योंकि वह जानता था कि यदि द्रोण भी जयद्रथ की रक्षा के लिये पहुँच गये तो अर्जुन को आज अपनी शपथ पूरा करना असम्भव हो जायेगा। द्रोणाचार्य के साथ युद्ध करने को युधिष्ठिर ने सात्यकि को भी भेजा। सात्यकि भारी युद्ध सामग्री लेकर गया था, किन्तु युधिष्ठिर का मन नहीं माना और उन्होंने भीमसेन को भी अर्जुन की सहायता के लिये भेज दिया। सात्यकि और भीम के आ जाने से अर्जुन खुशी से उछल पड़ा। जयद्रथ की रक्षा के लिए कौरव वीर बुरी तरह से जुटे हुए थे, दुर्योधन भी वहाँ आ पहुँचा और अर्जुन के बाणों से परास्त होकर वह फिर भाग गया और गुरु द्रोण के पास जाकार उनसे कहने लगा कि सात्यकि, भीम और अर्जुन आपके सामने से होकर जयद्रथ तक पहुँच गये।

आपको तो उन्हें यहीं से नहीं निकलने देना था। क्या कोई विश्वास करेगा कि आप जैसा महारथी उन तीनों में से किसी को भी न रोक पाया। मुझे सन्देह है कि आप जानबूझकर ढिलाई कर रहे हैं। द्रोण ने नाराज होकर कहा कि जो भी तुम्हारा सेनापति बनता है, उसी की तुम निन्दा करते हो। तुम चाहते हो कि जैसे पापी तुम हो, वैसे ही सब बन जायें। सात्यकि, भीम और

अर्जुन मुझ से युद्ध करने को तैयार न हुए। मैं अकेला कैसे उन पर आक्रमण करता? क्या तुम सोचते हैं कि मैंने उन्हें ललकारा भी न होगा? वे तो मेरी ललकार सुन कर भी न रुके। फिर मैं उनकी पीठ पर बाण चलाने का पाप कैसे कर सकता था? अभिमन्यु को मारते समय मैंने जो पाप होने दिया और स्वयं भी जो पाप किया, उसी के लिए मेरी आत्मा ने मुझे क्षमा नहीं किया है। मैं पश्चाताप की अग्नि में जला जा रहा हूँ। वीरतापूर्ण युद्ध संचालन की आशा तो तुम मुझ से रख सकते हो, लेकिन कायरतापूर्ण पाप की नहीं। द्रोणाचार्य का उत्तर सुनकर दुर्योधन चुपचाप चला गया।

14. युद्ध का चौदहवाँ दिन (जयद्रथ का वध)

आज के युद्ध में भीम ने दुर्योधन के अनेक भाइयों को मार डाला। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। सब ओर से जयद्रथ की रक्षा के लिये कौरव सेना हर सम्भव उपाय कर रही थी। युधिष्ठिर भी निश्चिन्त् नहीं था। वह भी अर्जुन की रक्षा के लिये वीरों को उसके पास तक पहुँचाने के प्रयत्न में लगा था। अर्जुन सब वीरों को मार धाड़ करता हुआ अन्ततः जयद्रथ के पास पहुँच ही गया। जयद्रथ भी रण कौशल में कम नहीं था। दोनों में ऐसा युद्ध हुआ—मालूम यह पड़ता था कि इन दोनों का युद्ध कभी समाप्त ही नहीं होने वाला है। युद्ध की भयंकरता को देखकर दुर्योधन गद्गद् हो सोचने लगा कि सूर्यास्त होने में अब देर नहीं है और सूर्यास्त से पहले अर्जुन इसका वध कर ही न पायेगा। तब अर्जुन अवश्य अग्नि में जल मरेगा। युद्धभूमि के सभी योद्धा लड़ते-लड़ते भी सूर्य की ओर टकटकी लगाये हुये थे। आकाश में नीले रंग का बादल का एक ऐसा टुकड़ा था जो देखने में स्वच्छ आकाश मालूम पड़ता था। श्रीकृष्ण ने उस टुकड़े को बहुत देर से देख रहे थे। जब सूर्य उस टुकड़े के नीचे आया तो अचानक अंधकार हो गया। सूर्य किसी को दिखाई न दिया। रणभूमि में सर्वत्र कोलाहल मच गया—सूर्य अस्त हो गया, जयद्रथ नहीं मरा।

कौरवों में हर्ष मनाया जाने लगा और जयद्रथ ने भी कहा—जान बची, लाखों पाये। दुर्योधन आनन्द में मगन होकर जयद्रथ से बोला कि अब तुम स्वतंत्र क्यों नहीं घूम रहे हो? सूर्य अस्त हो चुका है। अब अर्जुन अग्नि में

जल जायेगा। यह कह दुर्योधन ने जयद्रथ को सबसे आगे लाकार खड़ा कर दिया। इधर अर्जुन के लिए चिता बनाकर तैयार की गई। अर्जुन चिता में बैठकर सबसे क्षमा याचना कर रहा था और श्रीकृष्ण से विदा मांग रहा था। जब अर्जुन की बात श्रीकृष्ण सुन रहे थे तब जयद्रथ ने उससे विष में बुझे यह वचन कहे कि कृष्ण, अब देर क्या है, प्रण पालन करने का समय टलता जा रहा है, शुभ कर्म जितना शीघ्र हो, उतना ही भला। जयद्रथ की बात सुनकर श्रीकृष्ण जी को हँसी आ गई और इसके साथ ही सूर्य भी बादल के उस टुकड़े से बाहर निकल आया। श्रीकृष्ण जी एकदम बोले–

हे अर्जुन! प्रणपालन करो। देखो अभी दिन शेष है।

अर्जुन ने तत्काल पास रखा हुआ गाण्डीव उठाया और जयद्रथ को मार डाला। पाण्डव प्रसन्न होकर अपने शिविर में चले गये। दुर्योधन बहुत दुःखी हुआ। जयद्रथ के सिर के विषय में यह लोककथा प्रसिद्ध है कि अर्जुन के चमत्कारी बाण ने जयद्रथ का सिर काट तो दिया किन्तु उसे भूमि पर न गिरने दिया। वह सिर सीधा जयद्रथ के पिता की गोद में जाकर गिरा जो वन में बैठे संध्या कर रहे थे। संध्या समाप्त होने पर जब उन्होंने अपनी गोद में जयद्रथ का सिर देखा तो वह हड़बड़ाकर उठे और उठने के साथ ही वह सिर भूमि पर गिर पड़ा। उसके भूमि पर गिरते ही जयद्रथ के पिता के सिर के सौ टुकड़े हो गये। अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीम और सात्यकि ने इतने वेग से शंख बजाए कि दूर बैठे युधिष्ठिर को भी पता लग गया कि जयद्रथ मारा गया है। इससे युधिष्ठिर का उत्साह इतना बढ़ गया कि उसने अपनी सारी सेनायें एकत्रित कर द्रोणाचार्य पर धावा बोल दिया।

जयद्रथ का वध होने से दुर्योधन को बहुत दुःख हुआ और वह रोने लगा। कुछ क्षणों के बाद वह आचार्य द्रोण के पास गया और पहले की तरह कहने लगा– आप कपटी हो, ऊपर से तो हमारी बातें करते हो, और अंदर से पाण्डवों पर दया करते हो, उनको मारते नहीं। दुर्योधन की बातें सुनकर आचार्य द्रोण पूर्व की ही भांति बोले कि मैं कई बार कह चुका हूँ कि अर्जुन को कोई नहीं जीत सकता, तुम उससे सन्धि कर लो। परन्तु तुम मानते ही नहीं। फिर वह बोले कि अच्छा आज हम रात में भी युद्ध करेंगे। इतना कह आचार्य

द्रोण युद्ध करने के लिये चल पड़े। कौरवों की सेना में जयद्रथ की मृत्यु के कारण अधिक क्रोध था और पाण्डवों की सेना में उत्साह अधिक था। इसलिए दोनों सेनाओं में मशाल की रोशनी में घमासान युद्ध आरम्भ हो गया।

जयद्रथ का वध पाण्डवों ने छल से किया है, इसलिए कर्ण का क्रोध सीमा पार कर रहा था और अभिमन्यु का वध कौरवों ने अन्याय से किया है इसलिये घटोत्कच कौरवों के लिए महाकाल बना हुआ था। आज रात्रि के युद्ध में घटोत्कच ने ऐसी प्रलय मचा दी कि कौरवों की सेना में जिधर भी देखो, भगदड़ ही मचती दिखाई दी। इस भगदड़ से दुर्योधन घबरा गया और कर्ण से कहने लगा कि यदि इसी प्रकार कुछ देर चलता रहा तो हमारे एक-एक करके सभी वीर मारे जायेंगे, इसलिये आप अपने 'शक्ति' नामक शस्त्र का प्रयोग घटोत्कच पर ही कर डालो। दुर्योधन के कहने से कर्ण ने वह 'शक्ति' जो अर्जुन के लिए उसने सुरक्षित रख छोड़ी थी, घटोत्कच पर ही चला दी। शक्ति के लगते ही घटोत्कच मारा गया। घटोत्कच की मृत्यु से पाण्डव उदास हो गये किन्तु श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए। अर्जुन ने उनसे पूछा कि घटोत्कच की मृत्यु से आप प्रसन्न क्यों हैं? श्रीकृष्ण जी ने बताया कि कर्ण के पास 'शक्ति' नामक एक अमोघ अस्त्र था, वह उसने केवल तुम्हारे लिए ही सुरक्षित रखा हुआ था। अब उसने वह शक्ति घटोत्कच पर चला दी। अतः कर्ण के हाथों तुम्हारा जीवन सुरक्षित हो गया है, और उस शक्ति का प्रयोग एक बार कर लेने के बाद दुबारा नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अभिमन्यु को जिन छः वीरों ने घेर कर मारा था। इसी प्रकार जयद्रथ को भी उन्हीं छः वीरों ने घेर कर रखा था। फर्क सिर्फ इतना था कि अभिमन्यु अपने साथियों से परे अकेला ही शत्रुओं से घिरा था। परन्तु जयद्रथ अपने दल में ही घिरा हुआ था। छः योद्धाओं ने मिल कर अभिमन्यु का वध किया था किन्तु छः योद्धा ने जयद्रथ के जीवन रक्षा का प्रयास किया था। अभिमन्यु अपने दल से दूर लड़ने गया था। इसके विपरीत जयद्रथ का वध उसके दल में ही हुआ।

15. युद्ध का पन्द्रहवाँ दिन (द्रोणाचार्य वध) :

युद्ध करते-करते चौदह दिन बीत गये और कौरव पाण्डवों की थोड़ी सी सेना का संहार नहीं कर सके और दूसरी बात यह कि दुर्योधन द्रोणाचार्य को

कई बार अपमानित कर चुका था। इस कारण आज पन्द्रहवें दिन द्रोण को युद्ध में बड़ा क्रोध था। पाण्डवों की सेना को छिन्न-भिन्न करते हुए वे रणभूमि में घुसते चले गये। द्रुपद और विराट् दोनों ने मिलकर द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया, तो द्रोण ने उन दोनों का सिर काट डाला। पाण्डव सेना में से पराक्रम वीरो के मर जाने के कारण बड़ा हाहाकार मच गया। फिर अर्जुन और भीम बड़े क्रोध में कौरव सेना का संहार करने लगे।

श्रीकृष्ण ने भीम से कहा कि द्रोणाचार्य का वध कोई भी नहीं कर सकता। फिर भीम के पूछने पर उन्होंने कहा कि अनीति का परिमार्जन अनीति से ही हो सकता है। कौरवों ने युद्ध में कई बार अनीति का आश्रय लिया है इसलिए अब हमें भी अनीति अपनानी होगी। द्रोणाचार्य के वध के लिए हमें अनीति का आश्रय लेना पड़ेगा। यदि कोई झूठ ही कह दे कि अश्वत्थामा मारा गया है तो पुत्र के शोक में वे कमजोर हो जायेंगे तभी उनका वध करना सम्भव है अन्यथा नहीं। श्रीकृष्ण की सलाह से भीम ने एक 'अश्वत्थामा' नामक हाथी को मार दिया और द्रोण के पास जाकर कहने लगा कि अश्वत्थामा मारा गया है। यह समाचार सुनकर द्रोण को भारी दुःख हुआ और वे कमजोर होकर युद्ध बंद करके रथ में समाधि लगाकर बैठ गये।

इसके बाद वे अश्वत्थामा की मृत्यु की सत्यता जानने के लिए धर्मात्मा युधिष्ठिर के पास गये। क्योंकि सभी झूठ बोल सकते थे, एक युधिष्ठिर ही ऐसे थे जो कभी झूठ नहीं बोलते थे। इसलिए द्रोण ने युधिष्ठिर से पूछा कि क्या अश्वत्थामा मारा गया है? तब युधिष्ठिर ने कहा कि –अश्वत्थामा मारा गया है, मनुष्य या हाथी। युधिष्ठिर ने जब 'हाथी' कहा तभी श्रीकृष्ण ने इतने जोर से शंख बजवा दिया कि 'हाथी' शब्द द्रोण को सुनाई ही न दिया। युधिष्ठिर की बात पर द्रोणाचार्य ने पूरा विश्वास किया और पुत्र के शोक से व्याकुल होकर वे रथ से उतरकर भूमि पर बैठ गये और प्राणायाम करने लगे। सत्य भाषण की महत्ता दर्शाने के लिए कहा जाता है कि युधिष्ठिर सदा सत्य बोलते थे। इसलिए उनका रथ भूमि से चार अंगुल ऊपर चलता था, लेकिन यह झूठ बोलने पर रथ भूमि पर चलने लगा। युधिष्ठिर के इस सत्य को सत्य नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इसमें छल मिला हुआ था।

इतने में ही वह व्यक्ति सबके सामने दिखाई दिया जिसने मानो द्रोण के

वध के लिये ही जन्म लिया था। वह था पांचाल नरेश द्रुपद का पुत्र द्रौपदी का भाई और पाण्डवों का वीर धृष्टधुम्न। वह कायरतापूर्वक नंगी तलवार खींचकर द्रोण की ओर भागा। सब ओर हाहाकार मच गया। सब ओर से वीर उसके पीछे भागे कि उसे द्रोणाचार्य का वध करने से रोक दें किन्तु उसे कोई रोक नहीं सका और उसने तलवार का पूरे जोर से वार करके आचार्य का सिर धड़ से पृथक् कर दिया। द्रोण की मृत्यु से पाण्डवों को और विशेष रूप से अर्जुन को बहुत शोक हुआ और वह रोने लगा। द्रोण के पुत्र को भी पिता की मृत्यु से बहुत दुःख पहुँचा और उसने भीम को मारने का बड़ा प्रयत्न किया। उसका प्रयत्न व्यर्थ रहा। द्रोण का वध दोपहर के समय हुआ था। उनकी मृत्यु के तुरन्त बाद दुर्योधन ने अपनी सेना का सेनापति कर्ण को बना दिया। संध्या तक दोनों सेनाओं में भयंकर मारकाट मचती रही। रात को दुर्योधन कर्ण से युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपायों पर विचार-विमर्श करता रहा।

16. युद्ध का सोलहवाँ दिन (दुशासन का वध)

सोलहवें दिन प्रातःकाल होते ही दोनों पक्षों की सेनाएं युद्ध क्षेत्र में उतर पड़ी। कल द्रोण का वध हो गया था। इसलिए कौरवों की सेना क्रोध में भरी बैठी थी। मानों आज वह द्रोणाचार्य के वध का प्रतिशोध पाण्डवों के महारथी का वध करके लेगी। सेनापति कर्ण ने भी आज बड़े क्रोध के साथ अपने पैंतरे दिखाये। नकुल और कर्ण में बड़ा तुमुल युद्ध हुआ। कर्ण के हाथों आज नकुल की मृत्यु निश्चित् थी, यदि उसे अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण न हुआ होता। अर्जुन को कौरव सेना के दस राजाओं ने मिलकर घेर लिया। उस पर बाणों की इतनी मूसलाधार वर्षा की कि वह दिखाई भी नहीं देता था। फिर अर्जुन को भी क्रोध आना स्वाभाविक था। उसे क्रोध आया और उसने अपने तेज बाणों से कौरवों की सेना को तितर बितर कर दिया।

युद्ध अपनी यौवनावस्था पर था। दुःशासन ने भीम को युद्ध के लिए ललकारा। भीम उस पर खार खाये बैठा था। जुए में युधिष्ठिर के हारने पर दुःशासन द्रौपदी के बाल पकड़कर घसीट कर लाया था। वहाँ उसने उसका अपमान किया और उसके वस्त्र खींचकर भरी सभा में उसे नग्न करना चाहा था। दुर्योधन ने अपनी जंघा ठोककर द्रौपदी को उस पर बैठने का संकेत किया था। इस पर भीम ने क्रुद्ध होकर प्रतिज्ञा की थी कि मैं दुर्योधन की जंघा

अपनी गदा से अवश्य तोड़ दूँगा और दुःशासन की छाती फाड़कर उसमें से उसका रक्त पीऊँगा। भीम को अपनी प्रतिज्ञा स्मरण हो आई। उसने क्रोध में भर कर उसके सिर में ऐसी गदा मारी कि वह जाकर गिर पड़ा। फिर भीम ने लातों से मार-मार कर उसकी नस-नस ढीली कर डाली। वह अचेत-सा भूमि पर पड़ा था। भीम ने उसकी दाहिनी भुजा, जिससे उसने द्रौपदी के वस्त्र खींचने का निन्दनीय कार्य किया था, उखाड़कर दुर्योधन के रथ पर फेंक दी। फिर उसने दुःशासन की छाती चीर डाली और सबके देखते-देखते ओंठ लगाकर चूस-चूस कर उसका रक्त पिया और अंजली भर कर उसका रक्त अपने सारे शरीर से पोत लिया। उस समय भीम ने कहा था—

मेरे लिये आज मधु, घृत अथवा सत्कृत दाख के रस एवं अन्य रसों से भी और माता कुन्ती के स्तन दुग्ध से भी यह स्त्रियों के मान हरने वाले धर्म विरोधी शत्रु का खून अधिक स्वाद है। —कर्ण पर्व 83.30.31

17. युद्ध का सतारहवाँ दिन (कर्ण का वध)

अगले दिन कर्ण ने दुर्योधन से कहा कि श्रीकृष्ण को पाकर अर्जुन का बल बहुत बढ़ गया है। यही कारण है कि मैं कल पाण्डवों को नहीं जीत सका हूँ। आज मैं अधिक पराक्रम से लड़ूंगा और आप आज मेरे हाथ देखना। यदि आज शल्य मेरे सारथी बन जायें तो मैं अवश्य ही अर्जुन को मार डालूँगा। दुर्योधन ने शल्य से प्रार्थना की कि वह कर्ण के सारथी बन जाएं। किन्तु शल्य ने इसे अपना अपमान समझकर मना कर दिया। बाद में दुर्योधन के अनुनय विनय करने पर स्वीकार कर लिया। किन्तु शल्य ने दुर्योधन के सामने यह शर्त रखी कि मैं कर्ण को चाहे कुछ भी कहूँ, किन्तु कर्ण मुझे कुछ न कहे। शल्य की यह शर्त कर्ण ने भी मान ली और वह शल्य को अपना सारथी बनाकर पाण्डवों से युद्ध करने लगा। शल्य बार-बार उसका अपमान करके उसका उत्साह घटाता रहा।

कर्ण को दो शाप मिले हुए थे। एक तो उसके झूठ से अप्रसन्न होकर गुरु परशुराम ने शाप दिया था कि तुमने जो ब्रह्मास्त्र चलाना मुझ से सीखा है उसे तुम अंतिम समय में भूल जाओगे। दूसरा धनुर्विद्या के अभ्यास के समय उसका तीर एक गाय को लग गया था। गाय के स्वामी ब्राह्मण ने क्रुद्ध होकर

उसे शाप दिया था कि जिस तरह मेरी गाय मरी, इसी तरह तुम युद्ध में मरोगे और तुम्हारे रथ का पहिया कीचड़ में धंस जायेगा। दोनों सेनाएं आमने सामने डट गई। रथों की घरघराहट, अस्त्र शस्त्रों की झनझनाहट, हाथियों के चीत्कार और घोड़ों की हिनहिनाहट एवं वीरों की हुंकार से चारों दिशायें गूंज उठी। दुःशासन के वध से कर्ण खिन्न था। उसका भीम के साथ घमासान युद्ध होने लगा। दोनों वीर एक दूसरे की सेना को मार-मार कर भगाने लगे। इतने में ही अर्जुन भी त्रिगर्त्तकों को विजय करके आ पहुँचा। उसने आते ही कौरव सेना का संहार करना आरम्भ कर दिया। फिर कर्ण महाराजा युधिष्ठिर से युद्ध करने लगा। नकुल और सहदेव उनकी रक्षा कर रहे थे। कर्ण ने बाणों से नकुल और सहदेव को बेहोश कर दिया और फिर उसने कई बाण मार कर युधिष्ठिर को भी घायल कर दिया। इतने में ही शल्य कर्ण के रथ को दूसरी ओर भगा ले गया। युधिष्ठिर घायल होकर अपने शिविर में आ गये।

अर्जुन ने रणभूमि में जब युधिष्ठिर को नहीं देखा, तो वह उनकी दशा देखने के लिए शिविर में पहुँचे। युधिष्ठिर को जब यह मालूम हुआ कि अर्जुन कर्ण को बिना मारे ही यहाँ आया है तो उन्होंने उसके गाण्डीव को धिक्कारा। अर्जुन अपने गाण्डीव का अपमान न सह सका और उसने युधिष्ठिर को मारने के लिए तलवार खींच ली। श्रीकृष्ण के समझाने पर वह शांत होकर युधिष्ठिर से क्षमा मांगने लगा। फिर वह कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा करके रणभूमि में पहुँच गया। कर्ण और अर्जुन में भयंकर युद्ध होने लगा। कर्ण पूरे बल के साथ अर्जुन पर टूट पड़ा। उसने सर्वमुखास्त्र छोड़कर अर्जुन का मुकुट उड़ाया ही था कि उसके रथ का पहिया कीचड़ में धंसने लगा और वह ब्रह्मास्त्र भी चलाना भूल गया। तुरन्त ही कर्ण को गुरु और उस ब्राह्मण के शाप याद आये। वह घबरा उठा। उसने अर्जुन से कहा – वीर, तुम धर्म-युद्ध करने के लिए प्रसिद्ध हो, इसलिए जब तक मैं अपने रथ का पहिया कीचड़ से निकालकर समतल भूमि पर न रख लूं तब तक तुम्हें बाण चलाना रोक देना चाहिए। श्रीकृष्ण ने उन्हीं सिद्धान्तों की ओर संकेत करते हुये उत्तर दिया–

जब भीम को विषयुक्त भोजन दिया गया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था? जब लाक्षागृह निर्माण कर उसके अंदर ही अंदर पाण्डवों को कुन्ती समेत भस्म

करने का प्रयत्न किया गया था तब तुम्हारा धर्म कहाँ था? एक वस्त्रा द्रौपदी को घसीट लाते समय तुम्हारा धर्म कहाँ था? 13 वर्ष का बनवास पूरा कर चुकने पर भी जो तुमने पाण्डवों का राज्य उन्हें नहीं दिया उस समय धर्म की दुहाई चुप हो कहाँ दुबक गई थी। पापी लोग सदा दैव को कोसते हैं कुकर्म को नहीं। अकेले अभिमन्य को, जो तुम लोगों के पुत्र के तुल्य था, छः महारथियों ने मिलकर मार दिया। आज वे ही अत्याचारी लोग धर्म की दुहाई देकर चाहते हैं कि उसको विपत्ति में देखकर दया की जाये। ऐसे लोगों को धर्म का नाम जिह्वा पर लाते लज्जित होना चाहिए। धर्म तो सारे जीवन का आभूषण है, केवल युद्ध के लिये विहित।

कर्ण याद रखो! धर्म उसी की रक्षा करता है जो स्वयं धर्म की रक्षा करता है। कर्ण ने समझ लिया कि अर्जुन ऐसे तो पहिया निकालने का अवसर देगा नहीं। इसलिए उसने खींचकर अर्जुन को ऐसा बाण मारा कि वह कुछ क्षणों के लिए विचलित हो उठा। कर्ण ने पहिया निकालने का यह अवसर उचित समझा और वह तुरन्त रथ से कूदकर पहिया कीचड़ से निकालने लगा। इतने में ही अर्जुन को चेतना आ गई। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आदेश दिया—

अर्जुन! इस दुष्ट को यथाशीघ्र मार दो क्योंकि यह वीरों के नाम पर कलंक है। इसी ने तुम्हें युद्धभूमि से दूर कर दिया था। जिसके परिणामस्वरूप तुम्हारा बेटा अभिमन्यु मारा गया है।

श्रीकृष्ण की सम्मति से अर्जुन ने खींचकर कर्ण को ऐसा बाण मारा कि उसका सिर कटकर गिर पड़ा। कर्ण के मरते ही पाण्डवों की सेना में प्रसन्नता छा गई और कौरव सेना में हाहाकार मच गया। कर्ण की मृत्यु का समाचार पाकर दुर्योधन को बड़ा दुःख हुआ और वह बहुत देर तक विलाप करता रहा। अब दुर्योधन सर्वथा हताश हो चुका था।

18. युद्ध का अठारहवाँ दिन (शल्य का वध)

सतारह दिनों तक के युद्ध में जब कौरवों की सेना का निरन्तर संहार ही होता गया तो अठारहवें दिन कृपाचार्य दुर्योधन को समझाने लगे कि अब भी पाण्डवों से सन्धि कर लो। इसके उत्तर में वह बड़े दुःखी और निराश मन से

कृपाचार्य से कहने लगा—आचार्य ! हमने पाण्डवों को बहुत कष्ट दिये हैं, ये क्रोध से भरे हुए हैं । अब वे हमसे सन्धि कैसे कर लेंगे ? तत्पश्चात् दुर्योधन ने अश्वत्थामा के पास जाकर पूछा कि आज सेनापति किसे बनाया जाये ? उसने सलाह दी कि शल्य बहुत बलवान् है, आज उसी को सेनापति बनाना चाहिए । दुर्योधन की प्रार्थना पर शल्य ने सेनापति बनना स्वीकार कर लिया और वह पाण्डवों को पराजित करने के लिये युद्धभूमि में पहुँच गया । पाण्डव सेना की ओर से श्रीकृष्ण की सम्मति से स्वयं महाराजा युधिष्ठिर शल्य के साथ भिड़ने को तैयार हुए । दोनों में युद्ध आरम्भ हो गया । शल्य बड़ा क्रोधी था । उसने आवेश में आकर पाण्डवों की सेना पर इतने बाण बरसाये कि सारी युद्धभूमि बाणों से पट गई । युधिष्ठिर जब शल्य के बाणों से पीड़ित होने लगे तक भीम ने युधिष्ठिर की सहायता की और शल्य के घोड़ों और सारथी को मार डाला । फिर तो शल्य क्रोध में भरकर तलवार उठा युधिष्ठिर की ओर झपटा । भीम ने उसकी तलवार भी काट डाली । अब उसके हाथ में वह टूटी हुई तलवार ही थी । क्या करता, उसी टूटी हुई तलवार से ही युधिष्ठिर पर आक्रमण करने लगा । युधिष्ठिर को शल्य पर बड़ा क्रोध आ रहा था । उनके होठ फड़फड़ा रहे थे, आँखें लाल हो रही थी । शरीर काँप रहा था । उन्होंने दांत पीसते हुए एक बड़ी विकराल शक्ति दोनों हाथों से उठाकर पूरे बल के साथ शल्य के ऊपर छोड़ी । शक्ति के लगते ही शल्य का सिर धड़ से अलग हो गया । पाण्डवों ने प्रसन्न होकर एक साथ मिलकर शंख फूंकने आरम्भ कर दिये ।

(क) भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध

युद्ध में अपने भाइयों और सारी सेना का विनाश देखकर दुर्योधन बहुत दुःखी होकर चिन्ता करने लगा । यह सब क्या हुआ और ऐसा क्यों हुआ आदि प्रश्न उसके मस्तिष्क में बार-बार आने लगे । वह इसी विचार में डूबा हुआ था और पश्चाताप कर रहा था कि मैंने गुरुजनों और वृद्धों की बात बार-बार समझाने पर भी नहीं मानी, उसी का यह परिणाम भोगना पड़ रहा है कि जिस राज्य सुख के लिए, मैंने अपने योद्धाओं और मित्रों के बलबूते पर पाण्डवों से युद्ध किया । वह राज्य तो चला ही गया । लेकिन मेरे वे परम मित्र और हितैषी योद्धा भी न रहे । इस प्रकार पश्चाताप की अग्नि में जलता दुर्योधन चिन्तित

मन से युद्धभूमि छोड़कर उद्देश्यहीन दिशा की ओर चल दिया। मार्ग में उसे द्वैपायन नामक तालाब मिला। दुर्योधन का अंग-अंग घावों से भरा पड़ा था और सारा शरीर छलनी बना हुआ था। घावों की जलन से छुटकारा पाने के लिए वह उस तालाब के ठण्डे पानी में उतर गया। वह जल स्तम्भ विद्या जानता था।

जब दुर्योधन युद्धभूमि में कहीं दिखाई न पड़ा तो उसका पता लगाने के लिए पाण्डवों ने अपने गुप्तचर चारों ओर दौड़ाये। सारे झगड़े की जड़ दुर्योधन ही था इसलिये उसी के जीवित रहते पाण्डव शत्रु रहित कैसे हो सकते थे? अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा को दुर्योधन के तालाब में छिपने की बात मालूम थी। वे वहाँ जाकर दुर्योधन को बाहर निकल आने के लिए कहने लगे। उन्होंने उससे कहा कि अब छिपना ठीक नहीं है, पाण्डवों की शेष सेना को भी मारना चाहिए। दुर्योधन ने उत्तर दिया कि अब तो मैं थका हुआ हूँ, प्रातःकाल उठते ही हम उनसे युद्ध करेंगे। ये बातें जंगल से लौटते हुए शिकारियों ने सुन ली, और इनाम पाने की इच्छा से सीधे पाण्डवों के पास जा पहुँचे। इनसे दुर्योधन का पता पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए और शिकारियों को मुँह मांगा इनाम दिया। पाण्डव श्रीकृष्ण जी को साथ लेकर उस तालाब पर जा पहुँचे। जब इन्हें वहाँ आता देखा तो अश्वत्थामा आदि वहाँ से चुपचाप चल दिये। दुर्योधन को उस तालाब में छिपा हुआ जानकर पाण्डव उसे बाहर निकालने का उपाय सोचने लगे। श्रीकृष्ण की सम्मति थी कि उसे ऐसी जली-कटी और कड़वी बातें कहो, जिन्हें सुनकर वह स्वयं ही बाहर आ जाये।

यह सुन धर्मराज युधिष्ठिर ने उससे कहा—दुर्योधन! तुमने अपने पक्ष के सभी क्षत्रियों को मरवा डाला। तुम्हारा एक भी भाई जीवित नहीं बचा। अब तुम क्या सोचकर यहाँ आ छिपे हो! तुम्हें अपनी जान इतनी प्यारी है? क्या इसी बल पर तुम महारथी बनते थे? तुम्हें धिक्कार है, निकलो और वीरों की तरह मरो या मारो। दुर्योधन को युधिष्ठिर के इन वाग्बाणों की जलन, घावों की जलन से भी अधिक असह्य थी। वह अन्दर से ही बोला—युधिष्ठिर! मैं अपनी जान बचाने के लिए यहाँ नहीं छिपा हूँ, एक तो मेरा सारा शरीर घावों से भरा है और दूसरे मैं अधिक थका हूँ। इस समय मेरे

पास न तो रथ है, न कोई शस्त्रास्त्र ! मैं जल में विश्राम करने के बाद ही बाहर निकलूँगा और तब तुमसे युद्ध करूँगा । युधिष्ठिर ने फिर भी कहा कि हम बहुत देर से तुम्हें ढूंढ रहे हैं, इसलिये जल्दी निकलो और हम से युद्ध करो । दुर्योधन जल के भीतर से ही बोला—जिन भाइयों और मित्रों के लिए हमें राज्य चाहिये था, उनमें से अब कोई भी नहीं रहा । इसलिए अब मेरी इच्छा राज्य पाने की भी नहीं है । अब आप ही यह राज्य संभालिये । यह राज्य और वैभव—कुछ भी अब मेरे लिए आकर्षण की वस्तु नहीं है । मैं तो अब तपोवन का ही मार्ग अपनाऊँगा ।

दुर्योधन की ये बातें सुनकर युधिष्ठिर ने मुस्कराकर कहा—दुर्योधन ! तुम व्यर्थ ही बातें बना रहे हो, जिस राज्य को तुम छोड़ना चाहते हो, वह तो तुम्हें पहले ही छोड़ चुका है । हमें तुम्हारा दिया हुआ नहीं, अपना जीता हुआ राज्य चाहिये । इसलिए जल्दी ही बाहर निकलो और हमसे युद्ध करो । या तो तुम ही रहोगे या हम ही । युधिष्ठिर के इस प्रकार अपमानजनक वचन सुनकर दुर्योधन जल से बाहर निकल आया । बाहर जाकर उसने युधिष्ठिर से कहा कि – मैं अकेला हूँ और तुम कई हो । और न मेरे पास रथ है, न कोई शस्त्रास्त्र । इसलिए इस स्थिति में मेरे साथ तुम्हारा युद्ध करना एकदम पाप का कार्य है । तुम मुझे शस्त्रास्त्र दो और तुम एक-एक करके मेरे साथ युद्ध करो तो मैं तुम सब को मार दूँगा । युधिष्ठिर बोले कि बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आज चाहे अपनी मृत्यु सामने देखकर ही सही, धर्म और अधर्म की बात तो सूझी । किन्तु जब तुम कई महारथियों ने मिलकर अकेले निहत्थे अभिमन्यु को मारा था, तब तुम्हारा यह धर्म कहाँ गया था । आज अब तुम कवच पहिन लो और जो-जो शस्त्रास्त्र तुम्हें चाहिए ले लो और हम पाँचों में से तुम किसी भी एक के साथ लड़कर देख लो । यदि तुम हममें से किसी एक को हरा दोगे तो यह सारा राज्य तुम्हारा । बोलो, हम में से किस एक के साथ तुम लड़ना चाहते हो ?

दुर्योधन और युधिष्ठिर में ये बातें हो ही रही थी कि इतने में श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम भी वहाँ आ पहुँचे । दुर्योधन और भीमसेन—दोनों ही गदायुद्ध में उनके शिष्य थे । वे कहने लगे कि मैं अपने दोनों शिष्यों का गदा युद्ध देखने आया हूँ । वे वहाँ से सबको एक दूसरे समतल स्थान पर ले जाकर

बोले कि गदायुद्ध के लिये यह स्थान उचित है। भीम और दुर्योधन में गदायुद्ध छिड़ गया। दोनों एक दूसरे को परास्त करने का अवसर ताकने लगे। दोनों के शरीर पर गदा के कई घाव हो गये और उनका शरीर खून से लथपथ हो गया युद्ध की आचार-संहिता के अनुसार कोई वीर दूसरे की कमर से नीचे प्रहार नहीं कर सकता था। लेकिन भीमसेन दुर्योधन की जांघ तोड़ने की प्रतिज्ञा पहले ही कर चुका था। श्रीकृष्ण ने आकर देखा और अर्जुन की ओर संकेत कर दिया। अर्जुन ने अपनी जांघ ठोकर भीम को उसकी प्रतिज्ञा स्मरण करा दी। भीम समझ गया और लड़ते-लड़ते उसने दुर्योधन की जांघ पर गदा का प्रहार कर डाला। जांघ पर गदा का प्रहार होते ही दुर्योधन अचेत हो गया और भूमि पर गिर पड़ा। उसके बाद भीम ने दुर्योधन के सिर पर लात मारी। भरी सभा में दुर्योधन ने द्रौपदी का अपमान किया था, उस अवसर पर भीम ने जो प्रतिज्ञा की थी, आज वह पूरी कर दिखाई। श्रीकृष्ण ने कहा–

मरे धूर्त को और क्या मारना?

इस पर दुर्योधन ने क्रोध में आकर श्रीकृष्ण से कहा–

भीष्म का कूटविधि से वध अर्जुन से कराने वाले तुम ही तो हो। द्रोण की मृत्यु के लिये असत्य-भाषण की सलाह देने वाले तुम ही हो। जयद्रथ को मरवाने वाले एवं भूरिश्रवा का सिर उसकी योगावस्थित स्थिति में कटवा देने वाले और फिर कर्ण पर आपत्ति में वार कराने वाले तुम्हीं तो हो। अब यदि तुम्हारी सलाह से अर्जुन ने भीम को इशारा कर गदायुद्ध के नियमों के विरुद्ध मेरी भी जांघ तुड़वा दी तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? इतने नियमों के भंग का दोष अकेले तुम्हारे सिर पर धरकर और तुम सबको नारकीय बनाकर मैं स्वर्ग चला हूँ।

आचार-संहिता के विरुद्ध भीम के इस अन्याय से सब नाराज हुए। युधिष्ठिर को भी यह अनुचित प्रतीत हुआ। बलराम ने भीम का अन्याय देखा तो वह क्रोध से भरकर भीम को मारने चले। तब श्रीकृष्ण ने सब को समझाकर दुर्योधन के अब तक के अन्याय और द्रौपदी का अपमान बताकर सबके क्रोध को शान्त कर दिया।

(ख) अश्वत्थामा की क्रूरता

भीम और दुर्योधन के अन्यायपूर्ण युद्ध को देखकर अश्वत्थामा को क्रोध आ गया। वह यह प्रतिज्ञा करके कि मैं आज ही पाण्डवों का सर्वनाश करता हूँ, युद्ध के लिए निकल पड़ा। उसने कृपाचार्य और कृतवर्मा से कहा कि पाण्डवों ने मेरे पिता को धोखे से मारा है, दुर्योधन को भी अधर्म से मारा है। उन दोनों ने ऐसा करने से उसे बहुत रोका पर वह नहीं माना। अन्त में वे दोनों भी अश्वत्थामा की सहायता के लिए तैयार हो गये। दुर्योधन ने मरते-मरते भी एक ऐसा वार किया कि पाण्डवों का सम्पूर्ण वंश नष्ट हो जाने से जरा सी कसर रह गई। अश्वत्थामा ने दुर्योधन के सामने एक अत्यन्त कुटिल और वीभत्स प्रस्ताव रखा और उसे पूरा करने की अनुमति माँगी। दुर्योधन यदि चाहता तो अश्वत्थामा को समझा बुझाकर शान्त कर सकता था कि अब तो हम हार ही चुके हैं, अनीति में कोई सार्थकता नहीं। किन्तु मरणासन्न स्थिति में भी दुर्योधन पाण्डवों पर दुश्चक्र चलाने से बाज नहीं आया। उसने अश्वत्थामा को सहर्ष अनुमति देकर वह वार कर ही डाला। दुर्योधन के अंतिम शब्द ये थे–

हमें तो क्षत्रियोचित गति प्राप्त हो गई है। इस दिन के लिए क्षत्रिय पुत्र संसार में आता है। रहे युद्ध के अनिष्ट परिणाम इन का भार उन्हें उठाना होगा जो पीछे रहेंगे।

रात के सुनसान अंधकार में जब पाण्डव वीर अपने शिविर में कवच उतार कर सोए पड़े थे, अश्वत्थामा ने कृपाचार्य और कृतवर्मा को साथ लेकर अचानक धावा बोल दिया। उन्होंने यह कार्य चोरों के समान चुपचाप किया। सबसे प्रथम वे धृष्टधुम्न के शिविर में गये। अश्वत्थामा धृष्टधुम्न की छाती पर चढ़कर पागलों की भाँति उछलने लगा और लात मुक्कों से उसे मार दिया। इस के बाद उसने द्रौपदी के सोये हुए सभी पुत्रों को कुचल-कुचल कर मौत के घाट उतार दिया। उनका संहार करके जाते-जाते उन्होंने शिविर में आग लगा दी जो देखते-देखते आग अन्य शिविरों में भी भड़क उठी। यह समाचार देने के लिए तीनों भागे-भागे दुर्योधन के पास गये। उसके होठों पर हल्की सी मुस्कान आई। उसने कहा–

'मित्र ! तुमने मेरे लिये जो काम किया है वह न तो भीष्म पितामह कर पाए और न ही मेरा परम मित्र कर्ण कर पाया ।'

इसके साथ ही उसने अपने प्राण त्याग दिये । अश्वत्थामा ने गर्भवती उत्तरा पर भी वार किया परन्तु श्रीकृष्ण जी की कृपा से यह वार सफल न हो सका । उत्तरा का यही पुत्र महाराज परीक्षित के नाम से प्रसिद्ध हुआ । पांचों पाण्डव श्रीकृष्ण और सात्यकि को छोड़कर पाण्डवों की सेना में कोई भी नहीं बचा ।

(ग) द्रौपदी का विलाप

प्रातःकाल होते ही पाण्डवों ने जब अपने शिविरों की दुर्दशा देखी और अपने पुत्रों को मरा हुआ पाया तो वे मूर्च्छित हो गये । श्रीकृष्ण और सात्यकि ने उन्हें उठाकर बहुत समझाया । युधिष्ठिर भी विलाप करने लगे । युधिष्ठिर ने नकुल को भेजा कि जाओ ! द्रौपदी को बुला लाओ । द्रौपदी आई और रथ से उतरते ही पछाड़ खाकर गिर पड़ी । अब वह युधिष्ठिर से कहने लगी कि यदि आप अश्वत्थामा को नहीं मारेंगे तो मैं अन्न खाना छोड़ दूंगी और यहीं पर अपने प्राण त्याग दूंगी । युधिष्ठिर ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा कि इस समय तो अश्वत्थामा कहीं पर्वत में पड़ा होगा, हम उसे कैसे मार सकते हैं ? फिर द्रौपदी बोली कि जिस मणि को अश्वत्थामा अपने सिर पर लटकाये फिरता है, आप उसे छीन लें । जब तक मैं उसे आपके सिर पर सुशोभित न देखूँगी तब तक मुझे शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती । इसके बाद वह भीम के पास गई और कहने लगी—आपने अब तक सदा मेरी रक्षा की हैं अब भी आप ही मेरी रक्षा कर सकते हैं । अश्वत्थामा को मारकर मेरी रक्षा कीजिए । यह कहकर द्रौपदी रोने लगी । भीम द्रौपदी का रुदन न सह सका और अश्वत्थामा की मणि छीनने के लिए चल पड़ा ।

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर और अर्जुन को रथ में बैठाकर भीम की रक्षा के लिये उसके पीछे-पीछे चल दिये । उन्होंने सुना था कि अश्वत्थामा महात्मा व्यास जी के आश्रम की ओर गया है । उधर ही जाकर उन्होंने देखा वहाँ अश्वत्थामा कुशा की चटाई ओढ़े और शरीर पर धूलि लगाये बैठा है । उसे

देखते ही भीम ने उस पर बाण बरसाने आरम्भ कर दिये। जब उसने देखा कि भीम बाण चला रहा है और श्रीकृष्ण जी युधिष्ठिर तथा अर्जुन उसके पीछे खड़े हैं, तब वह बहुत घबराया। घबराहट में उसे कुछ न सूझा तो उसने एकदम ब्रह्मशिर नामक अस्त्र चला दिया। अस्त्र के चलने से ही आग की लपटें निकलने लगीं। यह देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तुम भी ब्रह्मशिर अस्त्र चलाओ नहीं तो भीम के प्राण नहीं बचेंगे। श्रीकृष्ण की सलाह से अर्जुन ने भी उसी अस्त्र का प्रयोग कर डाला। दोनों ओर से अस्त्रों का प्रयोग होने से चारों ओर अग्नि ही अग्नि जलने लगी।

अध्याय 12

युद्ध की समाप्ति

यह युद्ध उस समय का सबसे भयंकर और सबसे बड़ा युद्ध था। 18 दिनों के इस युद्ध में लगभग 20 लाख योद्धा 10 लाख घोड़े, 4 लाख हाथी एवं 4 लाख रथ काम आये। इस युद्ध में बड़े-बड़े विद्वान्, नीतिज्ञ, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि बहुत से लोग मारे गये। सब विद्या और वैदिक धर्म का लोप हो गया। लोग अधिक धनवान् होने से आपस में ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान करने लगे। जो बलवान् हुआ, वह दूसरों को हटा कर स्वयं राजा बन बैठा। आर्यावर्त देश में सर्वत्र खण्ड-खण्ड राज्य हो गया। तभी से इस देश की अवस्था हीन होनी शुरू हो गई।

1. धृतराष्ट्र का शोकातुर होना

संजय ने जब दुर्योधन की मृत्यु का समाचार धृतराष्ट्र को सुनाया तो वह धड़ाम से गिर पड़े और रोने लगे और कहने लगे कि मेरे पुत्र, मित्र व मंत्री सभी मारे गये हैं। अब तो मैं दुःख ही भोगूँगा। मैं जीकर करूँगा ही क्या? मैंने भीष्म की शिक्षा नहीं मानी, विदुर का उपदेश नहीं सुना, न ही मैंने श्रीकृष्ण की बात पर ध्यान दिया। मेरी बुद्धि न जाने कहाँ चली गई थी? उनकी बात न मानने का ही यह परिणाम है। विलाप करते हुए धृतराष्ट्र को संजय, महात्मा विदुर और महर्षि व्यास ने बहुत समझाया कि शोक करना छोड़ दीजिये, रोने धोने से कुछ नहीं बनेगा। शोक किसी की कुछ सहायता नहीं करता। संसार में जो पैदा होते हैं उनकी मृत्यु भी अनिवार्य है। धृतराष्ट्र का शोक जब कुछ कम हुआ तो वे रोती बिलखती स्त्रियों को लेकर कुरुक्षेत्र के मैदान में पहुँचे। युधिष्ठिर आदि से मिलकर गान्धारी भी बहुत रोई। अपने पुत्रों के शोक में रोती द्रौपदी को देखकर कुन्ती भी जोर-जोर से रोने लगी। युद्धभूमि में अपने-अपने पतियों को खोज-खोज कर स्त्रियाँ सिर पीट-पीटकर रोने लगी। रोते-रोते और विलाप करते जब बहुत देर हो गई तो श्रीकृष्ण ने सबको शान्त कर दिया और धृतराष्ट्र की आज्ञा से युधिष्ठिर ने सबका

प्रेतकर्म कर दिया ।

2. युधिष्ठिर का राज्याभिषेक

महाराजा युधिष्ठिर अपने बन्धु बान्धवों एवं मित्रों की हत्या से बहुत दुःखी होकर शोक से व्याकुल हो गये । भीम और अर्जुन को पास बुलाकर वे कहने लगे कि तुम्हारे ही पराक्रम और शक्ति से हमें युद्ध में विजय मिली है । अब तुम और नकुल, सहदेव चारों भाई मिलकर राज्य करो, मैं वन में रहूँगा । संसार में मेरा मन नहीं लगता । युधिष्ठिर के वनगमन की बात सर्वत्र फैल गई उन्हें समझाने के लिए बहुत से वेद विद्वान्, साधु-संन्यासी और महात्मा पधारे । महामुनि नारद, वेदव्यास और श्रीकृष्ण भी आये । सबका आदर सत्कार करने के बाद, युधिष्ठिर फिर से रोने लगे और बोले कि मैंने बड़े-बड़े पाप किये हैं । भीष्म, भाइयों और गुरु का वध मेरे ही कारण हुआ है । अभिमन्यु को भी मैंने ही चक्रव्यूह तोड़ने के लिए भेजकर मरवा डाला । इन पापों का प्रायश्चित अब ही हो सकता है । जब अपने ही बन्धु-बान्धव नहीं रहे तो सुनसान राज्य भोगकर ही मैं क्या करूँगा? महामुनि नारद और महर्षि वेदव्यास ने धर्मशास्त्र के उपदेश दे देकर बहुत समझाया, किन्तु उनका शोक कम न हुआ ।

इसके बाद भीम और अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा कि वन में आकर ही हमें कौरवों से युद्ध करने के लिए उकसाया करते थे । हमारी तो यही अभिलाषा थी कि युद्ध जीतकर हम आपको राज्य सिंहासन पर बैठा हुआ देखें । यदि हमें यह मालूम होता कि अन्त में आप ऐसी बात करेंगे, तो हम क्यों व्यर्थ में भाइयों का वध करते? हम युद्ध के झगड़े में पड़ते ही क्यों? इसके बाद कुन्ती और फिर नकुल और सहदेव ने भी उन्हें राज्य संभालने के लिए बहुत कहा किन्तु उनका मन शान्त नहीं हुआ । भाइयों और माता के समझाने से भी युधिष्ठिर राज्य संभालने के लिए राजी न हुए तो श्रीकृष्ण उन्हें समझाने के लिए आये । उनके उपदेश से उनका मन कुछ शान्त होने लगा और उन्होंने उनकी बात स्वीकार कर ली ।

योगिराज श्रीकृष्ण के उपदेशों से शान्त होकर युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र को आगे करके, भाइयों, ब्राह्मणों और ऋषि मुनियों को साथ ले, हस्तिनापुर की

ओर चल पड़े। हज़ारों की संख्या में नर-नारी महाराजा युधिष्ठिर के दर्शनों के लिए आये हुए थे। 'महाराज युधिष्ठिर की जय' के नारों से गगन-मण्डल गूंजने लगा। महाराज युधिष्ठिर के आने का समाचार पाकर नगरवासियों ने हस्तिनापुर को खूब सजाकर अपने हर्ष और प्रेम का परिचय दिया। युधिष्ठिर जब राजभवन में गये तो सिंहासन के दाई ओर महाराज युधिष्ठिर और बाईं ओर महारानी द्रौपदी को बैठाया गया। ऋषि घोलक ने वेदमंत्रों से उनका अभिषेक किया और उन्हें स्वर्ण के सिंहासन पर बैठाया गया। प्रजा ने अपनी श्रद्धा के अनुसार भेंट दी। इस अवसर पर महाराजा की ओर से ब्राह्मणों को असंख्य धन, दान, वस्त्र, गाय और घोड़े दिये गये। याचकों को भी मुंह मांगा मिला।

विधिवत् अभिषेक हो जाने पर युधिष्ठिर ने सबको योग्य कार्यों पर नियुक्त किया। प्रजा की सुख सुविधा के लिए कुंए, बावड़ी, तालाब बनवाये, बाग़ लगवाये और सड़कें बनवा दीं। जिनके पति युद्ध में मारे गये थे, उनके भरण-पोषण का भार राज्य ने स्वयं अपने ऊपर ले लिया। युधिष्ठिर धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। वे प्रजा का पुत्रवत् पालन करते और प्रजा उन्हें पिता समान समझती थी। युधिष्ठिर के विधिवत् सिंहासनरूढ़ होने के पश्चात् श्रीकृष्ण भी हस्तिनापुर में ही निवास करने लगे। कुछ दिनों के पश्चात् एक दिन वे महाराजा युधिष्ठिर से बोले कि भीष्म सूर्य के उतरायण होते ही प्राण त्याग देंगे। सूर्य अब उत्तरायण होने ही वाला है। पितामह सब धर्मशास्त्र और वेदों के ज्ञाता हैं। उनके पास चलकर उपदेश ग्रहण करना चाहिये।

श्रीकृष्ण की सम्मति से युधिष्ठिर अगले ही दिन भीष्म पितामह के पास आकर पुण्य और पाप के विषय में पूछने लगे। भीष्म ने कहा—मनुष्यों को जब तक समान रूप से सुख नहीं होगा, किसी को बहुत अधिक सुख के साधन हो और किसी को बहुत कम हों तक तक शान्ति नहीं हो सकती।

(1) **इसी प्रकार पाप का वर्णन करते हुए पितामह ने बताया कि यदि कोई तुम्हारा अधिकार छीन रहा हो और उस समय तुम त्याग और तप से काम लो तो यह पाप है। जो हाथ तुम्हारा अधिकार छीनने के लिए**

आगे बढ़ता है उसे वहीं समाप्त कर देना पुण्य है ।

(2) धर्म क्या है इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भीष्म पितामह ने समझाया कि व्यक्तिगत रूप से तप, करुणा, क्षमा, विनय और त्याग ये सब मनुष्य के धर्म हैं, किन्तु जब समुदाय का प्रश्न हो तो इन को भी छोड़ देना पड़ता है ।

3. भीष्म पितामह का प्राणत्याग

भीष्म पितामह से उपदेश ग्रहण कर युधिष्ठिर हस्तिनापुर आये और जब सूर्य उत्तरायण होने लगा, तब बहुत से वेदपाठी ब्राह्मणों तथा अगर, तगर, चन्दन, घी आदि सामग्री लेकर अपने साथियों सहित भीष्म जी के पास पहुँच गये । भीष्म ने उन्हें देखा तो बोले—अच्छा हुआ जो तुम आ गये । बाणों की शय्या पर मैं 58 दिन सोया हूँ । यह माघ मास का शुक्ल पक्ष है । अब मेरे प्राण त्यागने का समय समीप है । इसके बाद उन्होंने धृतराष्ट्र को समझाया कि अब शोक करना छोड़ दो । जो कुछ होना था, वह हुआ । अब आप पाण्डवों का ही अपने पुत्रों के समान पालन-पोषण कीजिए । भीष्म ने श्रीकृष्ण की ओर देखकर कहा कि अब मैं प्राणों का त्याग करूँगा । युद्ध में मेरा कोई अपराध नहीं था । मैंने दुर्योधन को बहुत समझाया कि पाण्डवों से शत्रुता मत करो, सन्धि कर लो, किन्तु वह हठी था, नहीं माना । आखिर वह सब का संहार करवा के ही रहा और अन्त में स्वयं भी मारा गया । यदि मुझसे कोई अनुचित कार्य हुआ हो तो क्षमा करना ।

इसके बाद वे युधिष्ठिर को सम्बोधित करके कहने लगे —हे राजन्! तुम प्रजा का पालन अच्छी तरह करना और गुरुजनों का कभी भी तिरस्कार मत करना । सब को उपदेश देने के बाद वे सब की ओर देखकर कहने लगे—हे राजन्! अब आप लोग मुझे विदा दें, अब मैं प्राण त्याग करूँगा । सबके देखते ही देखते उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये और सबके सब आश्चर्यचकित से देखते रहे । चन्दन की चिता पर सुगन्धित द्रव्यों से उनका दाह संस्कार विधिवत् किया गया । तदन्तर गंगा में स्नान करके सब हस्तिनापुर लौट आये । जब युधिष्ठिर को राज्य करते-करते काफी दिन हो गये और उनका राज्य समुचित रीति से चलने लगा तो श्रीकृष्ण उनकी सम्मति से द्वारिका चले गये । श्रीकृष्ण का बहुत दिनों बाद आया देखकर द्वारिकावासी

बहुत प्रसन्न हुए और अपने पुत्र के दर्शन करके वसुदेव और देवकी हर्ष से फूले न समाये। युद्ध का समाचार सुनने के लिए सब यादव उन्हें घेरकर बैठ गये। उन्होंने अभिमन्यु के वध का समाचार छोड़कर शेष सब समाचार विस्तारपूर्वक सुनाये। जब अभिमन्यु का समाचार पूछा गया तो उसके अनुशंस वध का समाचार पाकर सुभद्रा आदि बहुत रोई।

अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए महाराजा युधिष्ठिर का निमन्त्रण पाकर उचित समय पर श्रीकृष्ण यादव वीरों को साथ लेकर हस्तिनापुर आ गये। वहाँ उनका यथोचित सत्कार किया गया। यादव लोग आकर बैठे ही थे कि उसी समय उत्तरा के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। बालक मृतक सा जान पड़ता था। यह जान सारे राजपरिवार में शोक छा गया। श्रीकृष्ण को जब पता चला तो वे राजमहल में गये और उचित औषध उपचार करके बालक को चेतन कर दिया और महल में हर्ष छा गया। श्रीकृष्ण जी ने इस बालक का नाम परीक्षित रखा। धृतराष्ट्र के आश्रम में कई दिन रहकर वापिस हस्तिनापुर आ गये। दो वर्ष पश्चात् नारदमुनि ने युधिष्ठिर को समाचार दिया कि धृतराष्ट्र, कुन्ती और गांधारी कठिन तपस्या करने के बाद वन की अग्नि में भस्म होकर ब्रह्मलीन हो गये हैं और संजय हिमालय पर्वत पर चले गये हैं। यह शोक संवाद सुनकर पाण्डवों को महान् दुःख हुआ। युधिष्ठिर बोले– ईश्वर की इच्छा के आगे किसी की नहीं चलती।

युद्ध के बाद श्रीकृष्ण ने द्वारिका में 36 वर्षों तक राज्य किया। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया यदुवंशी राजा भोग विलास में डूबते गये। वे निर्भय होकर आहार-विहार करने लगे। वे अति दुर्व्यसनी हो गये और शराब पीना, हँसी, दिल्लगी करना और छोटी-छोटी बातों में ही आपस में लड़ना-झगड़ना उनका काम रह गया। श्रीकृष्ण की सम्मति से यादव तीर्थ यात्रा करने गये तो वहाँ भी वे स्वतंत्रता पूर्वक विचरने लगे और श्रीकृष्ण तथा बलराम के सामने ही शराब पीकर आपस में लड़ने झगड़ने लगे। शराब पीने की यादवों की बड़ी लत थी। सौभ नगर के राजा शल्य की चढ़ाई के समय इसकी मनाही कर दी गई थी। एक बार फिर आहुक, कृष्ण एवं बलराम इन सबके नामों से एक विज्ञप्ति निकाली गई–

मद्य-निर्माण राजाज्ञा द्वारा वर्जित है। आज के पीछे जो मद्यपान करेगा उसे बन्धुवों सहित प्राणदण्ड दिया जायेगा।

इस विज्ञप्ति से कुछ समय तक मद्य का प्रयोग रुक गया। एक बार यादव समुद्र के तट पर प्रभास तीर्थ पर गये। वहाँ उन्होंने शराब पीकर नाच-गान किया। शराब के नशे में उनमें इस विषय पर बहस होने लगी कि महाभारत के युद्ध में कौरवों ने अनीति का सहारा लिया तथा पाण्डवों ने? बहस बहुत उग्र हो गई और हाथापाई होने लगी। यह हाथापाई शीघ्र ही मारकाट में बदल गई। सात्यकि ने कृतवर्मा को मार डाला और कृतवर्मा के साथियों ने सात्यकि को वहीं जान से मार डाला। श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने सात्यकि को बचाना चाहा तो भीड़ भाड़ में वह भी मारा गया। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण के प्रपौत्र अनरुद्ध भी युद्ध में मारे गये। बलराम और श्रीकृष्ण को अकल्पनीय शोक हुआ। बलराम ने वहीं समाधि लगाई और प्राण त्याग दिये। श्रीकृष्ण जी वन में भटकते रहे। एक दिन वे मृत्यु समय निकट जान एक वृक्ष के नीचे लेटे थे कि जरा नामक शिकारी ने हिरण जानकर तीखा तीर मारा। वह तीर उनके तलुए को भेदता हुआ उनके शरीर में पहुँच गया और वे भी ज्योति ज्योत समा गये।

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी को साथ लेकर पूर्व दिशा में गये, फिर दक्षिण में, फिर पश्चिम में और अंत में उत्तर दिशा में हिमालय पर तप करने के लिए गये। पर्वत पर चढ़ते-चढ़ते हिम की अधिकता के कारण द्रौपदी गिर पड़ी और फिर न उठ सकी। कुछ दूर चलने पर सहदेव, फिर नकुल, फिर अर्जुन और उसके बाद भीमसेन भी गिर पड़ा। द्रौपदी और चारों भाई बर्फ में गिरकर मर गये। युधिष्ठिर का मन फिर भी विचलित नहीं हुआ और न ही उन्होंने पीछे मुड़कर के देखा। हिमालय की बर्फ से झुकी हुई चोटियों को पार करके महाराज युधिष्ठिर तिब्बत में पहुँच गये। अपना शरीर त्याग करने की इच्छा से बहुत अत्यन्त शीतल जल की नदी में डूब कर वहीं समाधिस्थ हो गये।

हमारे देश में उस समय 2340 छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य थे। श्रीकृष्ण ने इन राज्यों को 9 भागों में बाँट दिया एक केन्द्रीय शासित प्रदेश हस्तिनापुर

और 8 माण्डलिक। श्रीकृष्ण ने उन्हें संगठित कर महाराजा युधिष्ठिर के झंडे के नीचे लाकर खड़ा कर दिया और उन्होंने चक्रवर्ती राज्य किया। पंडित चमूपति जी के शब्दों में –

महाभारत श्रीकृष्ण की सबसे पहली जीवनी है। –योगेश्वर कृष्ण पृ. 20

महाराज युधिष्ठिर 36 वर्ष 8 मास और 25 दिन तक न्याय और धर्मपूर्वक प्रजा पालन करते रहे। उनके बाद राजा परीक्षित ने 60 वर्ष 1 दिन तक राज्य किया। इसके बाद राजा जनमेजय ने 84 वर्ष 7 मास और 23 दिन राज्य भोगा। इस प्रकार महाराजा युधिष्ठिर से लेकर महाराजा यशपाल तक 124 आर्य राजाओं ने 4157 वर्ष 8 मास 14 दिन तक भूमण्डल पर चक्रवर्ती राज्य किया। कौरवों पाण्डवों के सर्वनाश का कारण जुआ बना और यदुवंशियों के सर्वनाश का कारण बनी शराब। जुआ और शराब ये दोनों ही सब अनर्थों के मूल कारण हैं। ये मानव के महान् शत्रु हैं। इस ग्रंथ से मुख्य शिक्षा यही प्राप्त होती है कि जुआ और शराब के पास तो भूलकर भी नहीं जाना चाहिए। अतः संसार के सब जुआरियों व शराबियों से निवेदन है कि वे इन व्यसनों को त्याग दें। जैसे ऋग्वेद में निर्देश और आदेश दिया गया है–

अक्षैर्मा दीव्याः। –ऋ. 10.34.13

जुआ मत खेलो।

अंततः इतना कहना ही काफी होगा कि महर्षि वेदव्यास कृत 'महाभारत' में 4400 श्लोक थे। अब विश्व का विशालतम महाकाव्य है। इसमें 18 पर्व और 1,07,390 श्लोक हैं। इसको पंचमवेद के नाम से भी पुकारा जाता है। इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महर्षि वेदव्यास ने लिखा है–

यथा समुद्रा भगवान् तथा हि हिमवान् गिरि।
ख्याता वुभो रतननिधि तथा भारत मुच्यते।। –आदि पर्व

जिस प्रकार सागर और हिमालय जडरत्नों की खान है, उसी प्रकार महाभारत धर्म की खान है। इसी प्रकार स्वामी शिवानंद लिखते हैं–

Mahabharat contains the essence of all scriptures. It is an enyclopaedia of ethis, knowledge, politics, religion, philosophy and dharma. — Bliss Divine P. 350

महाभारत में सब धार्मिक ग्रंथों का सार निहित है। यह नैतिक ज्ञान, राजनीति, दर्शन, धर्म आदि का विश्वकोष है। इसी कारण किसी विद्वान् ने उचित ही लिखा है–

जिसने महाभारत नहीं पड़ा उसका भारतवासी होना व्यर्थ है।

यहाँ तक की 'गीता' भी 'महाभारत' के भीष्म पर्व से निकालकर बनाया गया 18 अध्याय का एक स्वतंत्र ग्रंथ है। वस्तुतः 'गीता' इसकी ही शिखामणि है। परन्तु महाभारत में प्रक्षिप्त भाग की कोई कमी नहीं है। आरम्भ में इस ग्रंथ में कितने श्लोक थे? इसके विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। परन्तु सर्वमान्यमत यह है कि महर्षि वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन जी ने इसकी रचना की थी तो उस समय इसका नाम 'जय' था तथा इसमें श्लोकों की संख्या लगभग 4400 थी। इसके पश्चात् इसके श्लोकों की संख्या 20,000 हो गई और इसका नाम 'भारत' पड़ गया। परन्तु आधुनिक महाभारत में श्लोक संख्या 1,07,390 है। इस प्रकार आज इसमें 13 गुणा मिलावट हो गई है अर्थात् 13 श्लोकों में से केवल एक श्लोक ही महिर्ष व्यास द्वारा रचित है शेष 12 मिलावटी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत का अधिकांश भाग प्रक्षिप्त है।

महाभारत के आदिपर्व में कुरुवंश का इतिहास तथा कौरव और पाण्डवों की उत्पत्ति, उनका प्रारम्भिक जीवनवृत्त, सभापर्व में युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ तथा युधिष्ठिर और शकुनि की द्यूत क्रीडा, वनपर्व में पाण्डवों का वनगमन और वन प्रयास, विराट् पर्व में पाण्डवों का अज्ञातवास, उद्योगपर्व में श्रीकृष्ण का दूत बनकर कौरवों की सभा में जाना तथा युद्ध न हो इसका उद्योग करना, भीष्मपर्व में युद्ध का उद्घोष, गीता का उपदेश, भीष्म द्वारा युद्ध का आरम्भ, भीष्म का शरश्य्या पर पड़ना, द्रोणपर्व में द्रोणाचार्य के नेतृत्व में युद्ध, अभिमन्यु वध, द्रोण का वध, कर्णपर्व में कर्ण और अर्जुन का भयंकर युद्ध तथा कर्ण का वध, शल्यपर्व में शल्य द्वारा युद्ध तथा शल्य का वध,

दुर्योधन और भीम के गदा युद्ध का वर्णन है। सौप्तिकपर्व में रात्रि में सोये हुये पाण्डवों के पुत्रों का अश्वत्थामा के द्वारा वध तथा दुर्योधन के प्राणों के त्याग का उल्लेख है। स्त्रीपर्व में स्त्रियों का विलाप, शान्तिपर्व में भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को राजधर्म और मोक्ष विषयक उपदेश अनुशासनपर्व में धर्म और नीतिविषयक उपदेश, अश्वमेधपर्व में युधिष्ठिर द्वारा अश्वमेध यज्ञ करना, आश्रमवासी पर्व में धृतराष्ट्र और गान्धारी का वानप्रस्थ में प्रवेश, मौसलपर्व में यादवों का मूसल द्वारा विनाश, महाप्रस्थानिक पर्व में पाण्डवों की हिमालय यात्रा तथा स्वर्गारोहणपर्व में पाण्डवों के स्वर्ग में जाने का वर्णन है। राजगोपालाचार्य जी इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–

The Mahabharat is infact veritable ocean counting countless pearls and gems. It is with the Ramayana a living foutain of ethic and culture of our motherland.

Mahabharat P-4

वस्तुतः महाभारत अनगिनत हीरों एवं मोतियों से भरा हुआ सार्वभौमिक सागर के समान है। यह रामायण की भाँति हमारी मातृभूमि की नैतिकता एवं संस्कृति का एक जीवित आधार स्तम्भ है।

अध्याय 13

महाभारत के 25 अत्यंत महत्वपूर्ण उद्धरण

आदि पर्व

1. परमात्मा सबके हृदय में बैठा है। वह सब के पाप-पुण्य जानता है और आप ठीक उसी के पास बैठकर पाप कर रहे हैं। पाप करके यह समझना कि मुझे कोई नहीं देख रहा है घोर अज्ञान है।
2. साम, दाम, दण्ड और भेद आदि किसी भी उपाय से अपने शत्रु को नष्ट कर देना ही राजनीति का मूलमंत्र है।

सभा पर्व

3. वेद की सफलता यज्ञ से, धन की सफलता दान से और भोग से, पत्नी की सफलता आनन्द और संतान से एवं शास्त्र की सफलता शील तथा सदाचार से होती है।
4. प्रारब्ध ही प्रधान है और पुरुषार्थ व्यर्थ है।
5. तुम क्षमा करो, उत्तम पुरुष किसी से वैर नहीं करते। दोषों की ओर न देखकर गुणों की ओर देखते हैं और विरोध तो किसी से करते ही नहीं।
6. काल डंडा मार कर किसी का सिर नहीं फोड़ता। उसका बल तो इतना ही है कि वह बुद्धि को विपरीत करके भले को बुरा और बुरे को भला दिखलाने लगता है।

वन पर्व

7. सोने के समय कौन नेत्र नहीं मूंदता? जन्म लेने के बाद किसमें गति नहीं होती? हृदय किस में नहीं है? और वेग से कौन बढ़ता है

   अष्टावक्र ने कहा—मछली सोने के समय आँख नहीं मूंदती, अण्डा उत्पन्न होकर चेष्टा नहीं करता, पत्थर में हृदय नहीं होता और नदी वेग से बहती है।

8. वेद का सार है सत्य, सत्य का सार है इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयम का सार है त्याग ।

9. मनुष्य जो भी शुभ या अशुभ कर्म करता है उसका फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है ।

उद्योग पर्व

10. जो धनी होने पर दान न दे और दरिद्र होने पर भी कष्ट सहन न कर सके–इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के गले में पत्थर बांधकर पानी में डुबा देना चाहिये ।

11. सत्य से धर्म की रक्षा होती है, योग से विद्या सुरक्षित होती है, सफाई से सुन्दर रूप की रक्षा होती है और सदाचार से कुल की रक्षा होती है ।

12. यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और अलोभ–ये धर्म के आठ प्रकार के मार्ग बतलाये हैं ।

13. बुद्धि से विचारकर किये हुए कर्म श्रेष्ठ होते हैं, बाहुबल से किये जाने वाले कर्म मध्यम श्रेणी के हैं, जंघा से होने वाले कर्म अधम हैं ।

14. संताप से रूप नष्ट होता है, संताप से बल नष्ट होता है, संताप से ज्ञान नष्ट होता है और संताप से मनुष्य रोग को प्राप्त होता है ।

15. अत्यंत अभिमान, अधिक बोलना, त्याग का अभाव, क्रोध, अपना ही पेट पालने की चिन्ता और मित्रद्रोह – ये छः तीखी तलवारें देहधारियों की आयु को काटती हैं । ये ही मनुष्यों का वध करती हैं न कि मृत्यु ।

द्रोण पर्व

16. इस पृथ्वी पर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु आदि भोग्य पदार्थ हैं वे सब एक मनुष्य को भी संतोष करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं–ऐसा विचारकर मन को शांत करना चाहिये ।

17. जो मनुष्य किसी के किए हुए उपकारों को नहीं मानता उसे ब्रह्म हत्या का पाप लगता है ।

शल्य पर्व

18. पहले तो सुई की नोक बराबर भी जमीन नहीं देना चाहते थे और आज सारी पृथ्वी देने को तैयार हो गये ।

शान्ति पर्व

19. यदि किसी कारण से स्वप्न में वीर्य स्खलित हो जाये तो इससे ब्रह्मचर्य का व्रत भंग नहीं होता । किन्तु इसके लिए उसे प्रज्वलित अग्नि में घृत की आहुतियां छोड़ कर प्रायश्चित करना चाहिये ।

20. माता-पिता और गुरु की सेवा ही मनुष्य के लिये सब से बड़ा धर्म है यही कल्याण साधन है, इससे बढ़कर कोई अन्य कार्य नहीं है ।

21. जो मनुष्य जिसके साथ जैसा बर्ताव करे, वह भी उसके साथ वैसा ही बर्ताव करे—यह धर्म है । कपटी के साथ कपट और सदाचारी के साथ सदाचार का व्यवहार करे ।

22. मौत के वश में पड़े हुए को कोई बचा नहीं सकता तथा आयु जिसकी शेष है उसे कोई मार नहीं सकता ।

23. विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है, सत्य के समान कोई तप नहीं है, राग के समान कोई दुःख नहीं है और त्याग के समान कोई सुख नहीं है ।

24. यह देह पंचभूतों का घर है इसमें हड्डियों के खंभे लगे हैं । यह नस-नाडियों से बंधा हुआ है । रक्त-मांस से पिला हुआ और चमड़े से मढ़ा हुआ है । इसमें मलमूत्र भरा है जिसके कारण दुर्गंध आती रहती है ।

स्वर्गारोहण पर्व

25. अठारह पुराण, सम्पूर्ण धर्मशास्त्र और छहों अंगों सहित चारों वेद एक ओर तथा केवल महाभारत दूसरी ओर यह अकेला ही उन सबके बराबर है ।

अध्याय 14

महाभारतप्रश्नोत्तरी

प्रश्न 1 : महाभारत के लेखक कौन है ?

उत्तर : महर्षि वेदव्यास ।

प्रश्न 2 : महाभारत के कितने पर्व हैं और इसका सर्वश्रेष्ठ पर्व कौन सा है और क्यों ?

उत्तर : महाभारत के 18 पर्व हैं । परन्तु इसका भीष्मपर्व सर्वश्रेष्ठ पर्व माना जाता है क्योंकि इसके अध्याय 25 से 42 तक 18 अध्यायों में श्रीमद्भगवद्गीता का वर्णन है जिसमें 700 श्लोक हैं । यह वेदों एवं उपनिषदों का सार है । अतः महाभारत में इसकी वही महत्ता है जो 'रामचरितमानस' में अरण्यकाण्ड की और भागवत पुराण में 11वें स्कंद की है ।

प्रश्न 3 : महाभारत में सब से छोटा और सब से बड़ा कौन-कौन सा पर्व है ?

उत्तर : महाभारत में सब से छोटा महाप्रस्थानिक पर्व (17वाँ पर्व) है जिसमें 3 अध्याय और 124 श्लोक हैं और सबसे बड़ा शांतिपर्व (12वाँ पर्व) है जिसमें 329 अध्याय 14732 श्लोक हैं ।

प्रश्न 4 : महाभारत का आरम्भ में क्या नाम था और इसमें कितने श्लोक थे और अब कितने श्लोक हैं ?

उत्तर : महाभारत का आरम्भ में जय नाम था फिर भारत पड़ गया और इसमें 4400 श्लोक थे । परन्तु अब इसमें 107390 श्लोक हैं और यह संसार के पुस्तकालय में विशालतम महाकाव्य है ।

प्रश्न 5 : महाराजा शांतनु की पत्नियों एवं पुत्रों के क्या नाम थे ?

उत्तर : महाराजा शांतनु की पत्नियों के नाम महारानी गंगा तथा सत्यावती थे । पुत्रों के नाम देवव्रत (भीष्म पितामह), चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य थे ।

प्रश्न 6 : धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म कैसे हुआ था?

उत्तर : सत्यावती के अनुरोध पर वेदव्यास ने अम्बिका, अम्बालिका और दासी से नियोगप्रथा द्वारा समागम करके धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म हुआ था क्योंकि ऐसा करना महारानी सत्यावती की मजबूरी तथा समय की मांग थी। महर्षि दयानंद लिखते हैं–

व्यास के साथ नियोग होने से पाण्डु, धृतराष्ट्र और दासी के पुत्र विदुर पैदा हुए। –उपदेश मंजरी (11वाँ विषय-इतिहास)

प्रश्न 7 : पाँचों पाण्डव – युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव का जन्म कैसे हुआ?

उत्तर : जिस प्रकार धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म नियोग प्रथा से हुआ था। उसी प्रकार से कुन्ती ने भी अपने पति पाण्डु के अनुरोध करने से क्रमशः धर्मराज, वायु, इन्द्र के संयोग से युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन को जन्म दिया था। इसी प्रकार माद्री ने भी अश्विनी कुमार के संयोग से नकुल और सहदेव जुड़वां भाइयों को जन्म दिया था। इस का मुख्य कारण यह था कि पाण्डु अत्यधिक कमजोर हो चुके थे और उनमें संतानोत्पत्ति करने की क्षमता नहीं थी। यहाँ तक कि ऋषियों ने उन्हें सहवास करने से भी मना कर दिया था। परन्तु वह अपने को नहीं रोक सके और एक बार माद्री से समागम करने पर ही उनकी मृत्यु हो गई। जैसे महर्षि दयानंद लिखते हैं–

धर्म, वायु और इन्द्र से नियोग करने पर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन उत्पन्न हुए और इसी प्रकार अश्विनी कुमार से नियोग करने पर नकुल और सहदेव उत्पन्न हुये। इसमें धर्म, इन्द्र, वायु के नाम समझना चाहिए। स्पष्ट विदित है कि वायु के संसर्ग से पुत्र उत्पन्न नहीं हो सकता।

–उपदेश मंजरी (11वाँ विषय - इतिहास)

प्रश्न 8 : धृतराष्ट्र की कितनी रानियाँ एवं संतानें थी ?

उत्तर : धृतराष्ट्र के दो रानियाँ थीं–

1. गांधारी– इसके पुत्र का नाम दुर्योधन और पुत्री का नाम दुःशला था ।

2. वैश्या – इसके पुत्र का नाम युयुत्सु था ।

विशेष सूचना – वस्तुतः दुःशासन, दुर्मुख, दुष्कर्म, विकर्ण आदि केवल दुर्योधन के 101 विभिन्न नाम हैं। जिसकी सूची महाभारत के आदिपर्व अध्याय 67 एवं 167 में दी गई है । परन्तु कुछ पौराणिक भाइयों का विचार है कि गर्भ तो एक ही हुआ परन्तु वेदव्यास जी ने उसके 101 टुकड़े करके 100 पुत्र और एक दुःशला नामक कन्या घी के बर्तन में डुबो-डुबो कर बना दिये । परन्तु यह वेदविरुद्ध एवं कपोलकल्पित है ।

प्रश्न 9 : कौन कहता है द्रौपदी के पाँच पति थे ?

उत्तर : युधिष्ठिर महाराज का वचन है–

त्वया जिता फाल्गुन याज्ञसेनी, त्वयैव शोभिष्यति राजपुत्री ।

प्रज्वलिताभाग्निरमित्रसाह, गृहाण पाणि विधिवत्त्वमस्याः ।।

महाभारत आदिपर्व 190.7

हे अर्जुन ! तूने ही राजपुत्री द्रौपदी को जीता है । यह तेरे ही साथ शोभित होगी । तू ही अग्नि के समक्ष इसका पाणिग्रहण कर ।

परन्तु अर्जुन का उत्तर और आगे का वृत्तान्त इसका सर्वथा खण्डन कर देता है । उसने युधिष्ठिर महाराज से कहा–

मा मां नरेन्द्र त्वमधर्मभाजं, कृथा न धर्मोऽयमशिष्टदृष्टः ।

भवान् निवेश्यः प्रथमं ततोऽयं, भीमोमहाबाहुरचिन्त्यकर्मा ।।

महाभारत आदिपर्व 190.8

हे महाराज ! आप मुझको अधर्म का भागी न बनाइये । बड़े भाई के विवाह से पहले छोटे भाई का विवाह हो जाए यह धर्म नहीं है । यह तो केवल 'अशिष्टों अर्थात् अनार्यों में ही देखा गया है'' आर्यों में नहीं । इसलिये पहले आपका विवाह होना चाहिये ।

ततः समाधाय स वेद पारगो, जुहाव मन्त्रैज्वलितं हुताशनम् ।
युधिष्ठिरं चाप्युपनीय मन्त्रविन्नियोजयामास सहैव कृष्णया ।।
प्रदक्षिणं तौ प्रगृहीतपाणी, समानयामास स वेदपारगः ।
ततोऽभ्यनुज्ञाय तमाजिशोभिनं, पुरोहितौ राजगृहाद् विनिर्ययौ ।।

महाभारत आदिपर्व 197.11-12

पश्चात् वेद के पारंगत विद्वान् मंत्रज्ञ पुरोहित धौम्य ने वेदी में प्रज्वलित अग्नि की स्थापना करके वेद मंत्रों के साथ आहुति दी और युधिष्ठिर को यज्ञोपवीत देकर उनका द्रौपदी के साथ ग्रन्थिबन्धन करा दिया और पुरोहित धौम्य राजभवन से बाहर चले गये ।

वेदों के पूर्ण विद्वान् पुरोहित धौम्य ने दोनों का पाणिग्रहण कराके उनसे अग्नि की परिक्रमा कराई, पुनः विवाह की सप्तपदी आदि पूरी विधि करा के युधिष्ठिर और द्रौपदी का विवाह सम्पन्न कर दिया । पश्चात् संग्राम में शोभा पाने वाले युधिष्ठिर को छुट्टी देकर पुरोहित जी राजभवन से बाहर चले गये ।

—आर्यमर्यादा 5-9-1971 ई०

भाइयो ! यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि विवाह तो द्रौपदी का युधिष्ठिर के साथ हुआ, तो स्त्री अर्जुन की कैसे हो गई ? केवल लक्ष्यवेध करने से तो स्त्री नहीं बन सकती थी, हाँ ! अधिकार अवश्य हो गया था, परन्तु वास्तविक प्रमाणपत्र तो विवाह संस्कार का होना शेष था, जिसके बिना द्रौपदी अर्जुन की पत्नी हो ही नहीं सकती थी । महाभारत में कहीं भी द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ लिखा हुआ नहीं मिलता ।

महान् पण्डित श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ भी यही मानते थे कि द्रौपदी युधिष्ठिर जी की ही पत्नी थी अर्जुन की नहीं। अर्जुन के साथ द्रौपदी का विवाह हुआ हो, ऐसा पूरे महाभारत में कहीं भी लिखा हुआ नहीं मिलता। बिना विवाह छोटी-छोटी बातों को खींचतान कर उनसे द्रौपदी को अर्जुन की स्त्री जबर्दस्ती सिद्ध करने का प्रयास करना निराधार और अनुचित है।

प्रश्न 10 : क्या श्रीकृष्ण के जन्म लेते ही वासुदेव की हथकड़ियाँ और जेल के द्वार स्वतः ही खुल गये थे?

उत्तर : नहीं। क्योंकि जेल के पहरेदार कंस के अत्याचारों से अत्यधिक दुःखी थे क्योंकि वह वासुदेव के 6 पुत्रों की हत्या कर चुका था। अतः उन्हें देवकी एवं वासुदेव के प्रति सहानुभूति हो गई। इस कारण कंस का वध करने के लिए सभी पहरेदार श्रीकृष्ण को बचाना चाहते थे। अतः श्रीकृष्ण का जन्म होते ही उन्होंने वासुदेव की हथकड़ियाँ और जेल के द्वार खोल दिये थे न कि ये स्वतः ही खुल गये थे जैसे कि अनेक पौराणिक भाई मानते हैं। जैसे कि ईश्वरी प्रसाद प्रेम लिखते हैं–

कृष्ण जन्म के समय फाटकों का स्वतः खुल जाना, कृष्ण के चरण स्पर्श से यमुनाजल का उतर जाना–ये सभी वर्णन काव्यगत अलंकार और मानव मनोविज्ञान की विविध भूमिकाओं से अधिक कोई अर्थ नहीं रखते। –शुद्ध कृष्णायन पृ० 204

प्रश्न 11 : क्या श्रीकृष्ण ने कौरवों के दरबार में चीर बढ़ाकर द्रौपदी की लाज बचाई थी?

उत्तर : नहीं। क्योंकि जब द्रौपदी का चीरहरण हुआ तो उस समय श्रीकृष्ण द्वारका में शाल्व के साथ युद्ध में व्यस्त थे। वे हस्तिनापुर में थे ही नहीं। क्योंकि जब श्रीकृष्ण को पाण्डवों के वनगमन का

पता चला तो वे अन्य यादवों के साथ काम्य वन में पाण्डवों से मिले और उस समय उन्होंने कहा था–

धर्मराज ! मेरे हस्तिनापुर न जाने का यह कारण है । मुझे विश्वास है कि यदि मैं वहाँ होता तो जुआ ही न होता, यदि जुआ होता तो दुर्योधन जीवित न रहता । अस्तु ! जो हुआ सो हुआ अब आप कहें मैं क्या करूँ ? स्पष्ट है कि द्रौपदी चीरहरण की कहानी सर्वथा कपोल कल्पित है । –महाभारत वनपर्व 22/42.43

प्रश्न 12 : यक्ष ने युधिष्ठिर से उसके मूर्छित भाइयों की मूर्च्छा भंग करके उनको जगाने के लिए कितने प्रश्न पूछे थे और उनमें से कोई दो महत्वपूर्ण प्रश्न बताइये ।

उत्तर : 123 प्रश्न । इनमें से दो महत्वपूर्ण प्रश्न निम्नलिखित हैं–

(1) पृथ्वी से बड़ा कौन है ?

माता

(2) आकाश से ऊँचा कौन है ?

पिता

मैथिलीशरण गुप्त ने उचित ही लिखा है–

उर्वी से गुर्वी है माता ।

पिता व्योम से ऊँचा जाता । ।

प्रश्न 13 : पाँचों पाण्डवों युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव में क्या-क्या विशेषताएं थीं ? इनकी पत्नियों के क्या नाम थे ?

उत्तर : प्रत्येक मानव परमात्मा की अद्‌भुत कृति है । अतः प्रत्येक मानव में कोई न कोई विशेषता अवश्य होती है । इसी प्रकार युधिष्ठिर भाला चलाने में अत्यधिक निपुण थे । भीम शारीरिक बल एवं गदायुद्ध में सर्वश्रेष्ठ थे । अर्जुन सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर थे, नकुल सौंदर्य में सर्वश्रेष्ठ थे और सहदेव सहनशीलता में सर्वश्रेष्ठ थे ।

इनकी पत्नियों के नाम निम्नलिखित थे–

युधिष्ठिर की पत्नियों के नाम द्रौपदी, देविका, भीम की पत्नियों के नाम बलधरा और हिडिम्बा, अर्जुन की पत्नियों के नाम सुभद्रा, उलूपी, और चित्रांगधा, नकुल की पत्नी का नाम करेणुमती तथा सहदेव की पत्नी का नाम विजया था ।

प्रश्न 14 : महाभारत युद्ध के मुख्य कारण क्या थे ?

उत्तर : (1) दुर्योधन का युधिष्ठिर के सभा भवन में कुछ व्यक्तियों, भीमसेन आदि द्वारा हँसी उड़ाना और अपमान करना ।

(2) दुर्योधन का हठ एवं अभिमान ।

(3) धृतराष्ट्र का पुत्र मोह और महत्वकांक्षा ।

(4) महारानी कुन्ती का अपने ज्येष्ठ पुत्र कर्ण के विषय में मौन रहना ।

(5) दुर्योधन शकुनि आदि पांडवों के लाक्षागृह द्वारा मारने का षडयंत्र रचना और जुए द्वारा छलकपट ।

(6) कर्ण का अपने मित्र दुर्योधन का अंतिम क्षण तक साथ देना ।

(7) श्रीकृष्ण का पाण्डवों को समय-समय पर युद्ध के लिये प्रोत्साहन एवं सहायता करना। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण द्वारा महाभारत के युद्ध से पूर्व गीतोपदेश देकर अर्जुन का मोह भंग करके ज्ञान प्राप्ति करवाना और पुनः युद्ध के लिये तैयार करना । क्योंकि श्रीकृष्ण अधर्म का विनाश करके धर्म की स्थापना करना चाहते थे ।

प्रश्न 15 : महाभारत के युद्ध में कौरवों और पाण्डवों के प्रधान सेनापति कौन-कौन नियुक्त हुये थे ?

उत्तर : कौरवों के सर्वप्रथम भीष्म पितामह प्रधान सेनापति 10 दिन तक

युद्ध करते रहे। इसके पश्चात् क्रमशः द्रोणाचार्य, कर्ण, शल्य और अश्वत्थामा कौरवों के सेनापति नियुक्त हुये थे। धृष्टद्युम्न को पांडवों का सर्वप्रथम सेनापति नियुक्त किये गये थे और सारे युद्ध में वही पांडवों के प्रधान सेनापति बने रहे। परन्तु युद्ध के अंतिम दिन जब वे अपने शिविर में सो रहे थे तो अश्वत्थामा ने उनका वध कर दिया।

प्रश्न 16 : महाभारत के युद्ध में कौरवों और पाण्डवों के योद्धाओं का किस योद्धा ने किस योद्धा का वध किया था?

उत्तर : शल्य ने राजकुमार उत्तर का और भीष्म पितामह ने राजकुमार श्वेत का वध युद्ध के पहले ही दिन कर दिया था। अभिमन्यु का वध 6 कौरव महारथियों ने मिलकर किया था। घटोत्कच का वध कर्ण ने, द्रोणाचार्य ने विराट एवं द्रुपद का वध किया। अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के पांचों पुत्रों का वध किया था।

इसी प्रकार युधिष्ठिर ने शल्य का, भीम ने दुःशासन एवं दुर्योधन का, अर्जुन ने जयद्रथ एवं कर्ण का, सहदेव ने शकुनि का और धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का वध किया था।

प्रश्न 17 : महाभारत युद्ध कितने दिन तक चला था और इसमें लगभग कितने योद्धा, कितने घोड़े कितने हाथी कितने रथ काम आये थे? इस युद्ध में कौन-कौन से योद्धा बचे थे?

उत्तर : महाभारत का युद्ध 18 दिन तक चला था और इसमें लगभग 20 लाख योद्धा, 10 लाख घोड़े, 4 लाख हाथी और 4 लाख रथ काम आये थे। इस युद्ध में निम्नलिखित योद्धा बचे थे।

पाँच पांडव–युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव, कृष्ण, सात्यकि, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, युयुत्सु योद्धा ही बचे थे।

प्रश्न 18 : भीष्मपितामह बाणों की शय्या पर कितने दिन पड़े रहे थे?

उत्तर : भीष्म पितामह 58 दिन तक बाणों की शय्या पर पड़े रहे थे क्योंकि उन्हें इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त था। अतः उन्होंने अपनी इच्छानुसार उत्तरायण में प्राण त्यागे थे।

प्रश्न 19 : श्रीकृष्ण के जीवन की उपलब्धियाँ क्या थीं?

उत्तर : श्रीकृष्ण के जीवन की उपलब्धियाँ निम्नलिखित थीं–

(1) श्रीकृष्ण ने गीता जैसा दार्शनिक ग्रंथ दिया जोकि संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है।

(2) श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध में पांडवों को विजय दिलवाई थी। यदि वे अपनी राजनीति चातुर्य का प्रयोग न करते तो पांडव विजयी नहीं हो सकते थे।

(3) उस समय भारतवर्ष में 2340 छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य थे। श्रीकृष्ण ने इन राज्यों को 9 भागों में बाँट कर एक केन्द्रीय शासित प्रदेश हस्तिनापुर और 8 माण्डलिक बनाये। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने उन्हें संगठित कर महाराज युधिष्ठिर के झण्डे के नीचे लाकर खड़ा कर दिया और उन्होंने इस प्रकार चक्रवर्ती राज्य प्रदान किया।

(4) श्रीकृष्ण ने अत्याचारों एवं पापों का नाश करके धर्म की स्थापना की।

प्रश्न 20 : महाराज युधिष्ठिर ने महाभारत युद्ध के पश्चात् कितने समय तक भारतवर्ष पर राज्य किया?

उत्तर : 36 वर्ष, 8 मास और 25 दिन तक।

प्रश्न 21 : पांडवों ने 12 वर्षीय बनवास काल कहाँ-कहाँ व्यतीत किया?

उत्तर : पांडवों ने 12 वर्ष में 1वर्ष द्वैतवन, 5 वर्ष काम्यक वन में, 1 वर्ष इतस्ततः नदियों पर, 4 वर्ष गंधमादन पर्वत पर, 1 वर्ष थामुन पर

व्यतीत किया ।

प्रश्न 22 : पांडवों और द्रौपदी ने महाराजा विराट की राजधानी में किस-किस नाम एवं व्यवसाय को अपनाकर अपना अज्ञातवास व्यतीत किया था ?

उत्तर : युधिष्ठिर ने कंक नामक ब्राह्मण, भीम बल्लब नामक रसोइया, अर्जुन बृहन्नला नामक नपुंसक, नकुल ग्रंथिका नामक अश्वबंधक, सहदेव तंत्रिपाल नामक गोपालक, द्रौपदी महारानी सुदेषणा की सैरंध्री बनकर अज्ञातवास में रहे ।

प्रश्न 23 : द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के क्या-क्या नाम थे ?

उत्तर : (1) प्रतिविन्ध्य, (2) सुतसोम, (3) श्रुतकीर्ति, (4) शतानीक, (5) श्रुतकर्मा ।

प्रश्न 24 : भीष्म पितामह ने किन-किन व्यसनों से दूर रहने का उपदेश युधिष्ठिर को दिया ?

उत्तर : महाभारत युद्ध के बाद जब पांडव जीत गए और युधिष्ठिर राजा बन गये तब युधिष्ठिर कुरुक्षेत्र में तीरों की शैय्या पर लेटे भीष्म पितामह से राजनीति की शिक्षा लेने पहुँचे । भीष्म ने युधिष्ठिर को जितनी भी बातें बताई वे आज भी हमारे जीवन के लिए उपयोगी हैं । जब युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि मनुष्य को किन आदतों से दूर रहना चाहिये तो भीष्म ने उन्हें निम्नलिखित 9 आदतों के बारे में बताया जो इंसान के पतन का कारण बनती है ।

(1) जुआ –जुआ मनुष्य की सबसे बुरी आदतों में से एक माना जाता है । जुआ खेलने वाला जब इसका आदी हो जाता है तो वह किसी अन्य विषय के बारे में सोच ही नहीं सकता ।

(2) शिकार – शिकार अर्थात् जीव हत्या नहीं करनी चाहिए ।

(3) दिन में सोना – दिन में सोना आलस की निशानी है ।

आलसी मनुष्य घर के प्रति अपनी जिम्मेदारियां कभी पूरी नहीं कर सकता ।

(4) दूसरों की निन्दा – दूसरों के कार्यों में दोष ढूंढना, दूसरों की बुराई करना कई लोगों की आदत बन जाती है ।

(5) स्त्रियों में आसक्ति – जिस मनुष्य को स्त्रियों में आसक्ति हो जाती है वह हर समय उनके आगे पीछे घूमता रहता है ।

(6) शराब पीना – शराब पीने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । मनुष्य को अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं रहता । ऐसा व्यक्ति परिवार और मित्रों को कष्ट पहुंचाता है ।

(7) नाचना-गाना – जिस मनुष्य को नाचने गाने की आदत लग जाती है वह हर समय यही काम करता रहता है ।

(8) बाजा बजाना – वाद्य यंत्र बजाना कई लोगों का शौक होता है । एक सीमा तक तो यह प्रतिभा सभी को अच्छी लगती है । लेकिन सीमा पार हो जाने से यह आदत परेशानी पैदा कर देती है ।

(9) व्यर्थ घूमना – कई लोगों को बिना मतलब के घूमने की आदत होती है जिसकी वजह से वे हर समय कहीं न कहीं भटकते ही रहते हैं ।

प्रश्न 25 : महाभारत के अध्ययन से क्या शिक्षा मिलती है ?

उत्तर : महाभारत से हमें यह शिक्षा मिलती है कि कौरवों और पांडवों के सर्वनाश का कारण जुआ बना और यदुवंशियों के सर्वनाश का कारण शराब बनी । अतः जुआ और शराब के पास भूलकर भी नहीं जाना चाहिए । मैं संसार के सभी जुआरियों और शराबियों से सविनय अनुरोध करता हूँ कि वे इन व्यसनों को त्याग दें ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेंर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)